"मैं यह समझता हूं कि भारत जैसे देश के लिए पांच लाख से अधिक गांवों में पंचायतें स्थापित करना एक ठोस और क्रांतिकारी कदम है। निचले स्तर पर गांव से लेकर ऊपर तक काम कर रही प्रतिनिधि स्वरूप इन लोकतांत्रिक संस्थाओं के विशाल जाल की कल्पना मात्र से मुझे रोमांच हो आता है।"

जवाहरलाल नेहरू

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 6 | चैत्र-वैशाख 1920 | अप्रैल 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
सलिल शैल

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, सहायक व्यापार व्यवस्थापक (सर्कुलेशन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
यह अंक : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

इस अंक में

पंचायती राज का अगला पड़ाव : सुराज बरास्ता स्वराज	प्रो. कमल नयन काबरा	3
पंचायती राज प्रणाली : एक लेखा-जोखा	जगमोहन माथुर	6
पंचायती राज व्यवस्था : वित्त की समस्या	डा. प्रयाग दास हजेला	8
पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने की आवश्यकता	सुंदर लाल कुकरेजा	11
नई पंचायती राज व्यवस्था के पांच वर्ष : एक समीक्षा	प्रो. एस.एन. मिश्र	15
पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाने में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका	डा. चंदन दत्ता	19
पंचायतों में महिलाएं : जरूरत है सक्रिय भूमिका की	श्रीवल्लभ शरण	23
पंचायती राज व्यवस्था : विकास के तरीके में बदलाव की जरूरत	प्रो. एम. असलम	27
पंचायत और उनका कैडर	डा. महीपाल	30
मुंशी जी (कहानी)	डा. हरिकृष्ण देवसरे	32
महिला और पंचायत : पांच वर्ष का आकलन	मंजु पवार	35
नई पंचायती राज व्यवस्था : कहां तक कारगर	दिवाकर दुबे	37
हल्दी पेटेंट : भारतीय विज्ञान और तकनीक की अद्वितीय विजय	डा. नरसिंह बिनानी	39
आत्म सुधार के लिए गांव चलो! (स्थायी स्तम्भ)	सत्यदेव विद्यालंकार	41
ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका	डा. अनुराधा, डा. रवि शंकर जमुआर	43
नई पंचायती राज व्यवस्था में सरपंचों की भूमिका	नसरुननिशा	46
लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और महिलाओं का सशक्तिकरण	डा. यतीन्द्र सिंह सिसोदिया	51
पंचायती राज का विकास और जन-सहभागिता	डा. राजमणि त्रिपाठी, डा. सुनीत सिंह	53
मध्य प्रदेश में ग्राम सभाएं : व्यावहारिक स्थिति	आशीष भट्ट	57
पपीते का सेवन : स्वस्थ जीवन का सशक्त आधार	डा. विजय कुमार उपाध्याय	60

पाठकों के विचार

स्तर दिन-ब-दिन बेहतर हो रहा है

कुरुक्षेत्र का जनवरी 1998 अंक हस्तगत हुआ। नि:संदेह आप सामग्री चयन में काफी सतर्कता बरतते हैं, तभी तो *कुरुक्षेत्र* का स्तर दिन-प्रतिदिन उच्चता को स्पर्श करता जा रहा है। मैं तो इस प्रकाशन को एक शोध प्रकाशन मानता हूं।

गांधी जी की प्रासंगिकता को सिद्ध कर लेखकों ने गांधी जी का सही मूल्यांकन किया है। यह यथार्थ है कि गांधी जी के विचार तथा चिंतन प्रत्येक काल और परिस्थिति में सारगर्भित और उपयोगी हैं। स्वतंत्रता की अर्द्धशती के अवसर पर आपने गांधी जी की विश्लेषणात्मक प्रस्तुति कर स्तुत्य कार्य संपादित किया है।

प्रो. शरद नारायण खरे, शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.)

जरूरत है देश प्रेम की

भारत में लघु उद्योग : समस्याएं और सुझाव (दिसंबर 1997) लेख में डा. नरसिंह बिनानी ने लघु उद्योगों की समस्याएं बताते हुए लिखा है कि विदेशी कंपनियों और उद्योगों को हड़पने की छूट भी दे दी गई है।

मेरे मत में यदि हम भारतीयों में देश प्रेम की भावना (जापान की तरह) जागृत करने की कोशिश की जाए, तो विदेशी कंपनियों के उत्पादन अपने आप ही बाजार से बाहर हो जाएंगे। आज आम भारतीय को चाहिए कि स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करे। वैसे भी भारतीय उत्पादनों से प्रतिस्पर्धा करने की हिम्मत मौजूद है। मात्र जरूरत है देश प्रेम की।

गोपाल दास बंसल, संवाददाता, नई दुनिया, बस स्टैंड शहडोल (म.प्र.)

कहानी मर्मस्पर्शी लगी

कुरुक्षेत्र का दिसंबर 1997 अंक के ज्ञानवर्द्धक लेख तथा तेतरवे जी की कहानी दिल को छू गई। बंकर राय का *आधुनिक टेक्नोलाजी : गांवों की समस्या का समाधान नहीं* लेख अच्छा लगा। ऐसा लगा लेखक सचमुच ग्रामीण परिवेश से आने के साथ-साथ वहां की समस्याओं और समाधान पर ईमानदारी से लेखनी चलाते हैं। डा. नरसिंह बिनानी का आलेख कुछ और तथ्यों की कसावट चाहता है। डा. वीणापाणि सिंह की ओजोन परत पर जानकारी ने निराश किया।

अजीत कुमार, हीराछपरा, आजादपुर, चम्पारण (बिहार)

पर्यावरण पर विशेषांक निकालें

कुरुक्षेत्र का दिसंबर 1997 अंक विषय चयन, संयोजन और प्रस्तुति की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती कई अंकों से आगे रहा।

गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में जहां डा. उमेश चंद्र ने आंकड़ों की बहुलता के बीच कुछ सार्थक सुझाव दिए, वहीं डा. वीणापाणि सिंह के लेख *ओजोन परत* में 'पर्यावरण बचाओ' की तलस्पर्शिनी चिंता प्रकट हुई है। कहानी *कुरुक्षेत्र* में ग्रामीण और नगरीय जीवन को समाज के विशाल फलक पर आकर्षक ढंग से संश्लिष्ट करके एक संतुलन स्थापित किया गया है। औद्योगिक प्रसार के बीच हमारी मानवता, सहज स्नेह का भी कोई स्थान है? कहानी ने इस प्रश्न पर आशावादी रुख दिखाया है। हमारे अंतर में अनायास ही 'दिनकर' की पंक्तियां अनुगुंजित होने लगती हैं—

लोहे के पेड़ हरे होंगे
तू गान प्रेम के गाता चल।
नम होगी यह मिट्टी जरूर
आंसू के कण बरसाता चल।

अंत में निवेदन है कि प्राचीन भारत के स्वच्छ पर्यावरण की झांकी दिखाते हुए उससे वर्तमान विषमय वायुमंडल को आलोकित करते हुए *कुरुक्षेत्र* का एक विशेषांक प्रकाशित करें।

रवीन्द्र कुमार पाठक, पाठक विगहा, पड़रावां, औरंगाबाद (बिहार)

गांधी जी के अधिकांश सिद्धांत आज भी प्रासंगिक

डा. दुर्गादास शर्मा के लेख *आज के समय में गांधी जी की प्रासंगिकता* (जनवरी 1998) के संदर्भ में मेरे अनुसार गांधी जी के अनेक सिद्धांत प्रासंगिक हैं, लेकिन सारे नहीं क्योंकि किसी भी विचारक के विचार या सिद्धांत हर काल में प्रासंगिक नहीं रह सकते। फिर भी उनके कई मत, जैसे—ट्रस्टीशिप सिद्धांत, ग्राम विकास, लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, छुआछूत निवारण आदि से संबंधित विचारों की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। समकालीन ग्लोबल अर्थ-व्यवस्था में अपनी अर्थ-व्यवस्था को, अपने स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन देकर ही बचाया जा सकता है। ट्रस्टीशिप सिद्धांत के महत्व को अब तो अमरीका जैसे घोर पूंजीवादी देश भी स्वीकारने लगे हैं। हिंद स्वराज में वर्णित कई बातों से असहमति तो पंडित नेहरू ने गांधी जी के जीवन काल में ही व्यक्त की थी। वस्तुत: उसमें वर्णित कई बातों का मूलार्थ यह है कि गांधी जी को वकील, डाक्टर, साथ ही मशीन आदि की उस पश्चिमी एप्रोच से असहमति थी जिसमें मानवतावादी दृष्टिकोण से मतलब नहीं होता। 'गांधीवादी साम्यवाद' में गांधी जी ने मार्क्स के साम्यवाद तथा देशी अहिंसा के सिद्धांतों का बखूबी तालमेल किया और आज इसकी सर्वाधिक जरूरत है क्योंकि पिछले 50 वर्षों में अमीरी-गरीबी के बीच की दरार ज्यादा चौड़ी हुई है।

हेमंत कुमार हेम, खाड़ीघाट, हसनगंज, कटिहार (बिहार)

पंचायती राज का अगला पड़ाव : सुराज बरास्ता स्वराज

प्रो. कमल नयन काबरा

क्या पंचायतों की नई, संविधान-सम्मत और समर्थित व्यवस्था को भारत में ग्राम स्वराज और सुराज का आधार माना जा सकता है? निस्संदेह हमारे संविधान में सबसे निचले स्तर पर स्थानीय सरकार की व्यवस्था तथा एक-दो राज्यों के दुर्भाग्यपूर्ण अपवाद को छोड़, तीस लाख पंचों (जिनमें एक-तिहाई महिलाएं तथा इतने ही सबसे उपेक्षित और दलित तबकों से आए लोग हैं) द्वारा संचालित पंचायतों का कार्यरत होना वास्तव में एक ऐतिहासिक महत्व तथा दूरगामी संभावनाओं से ओत-प्रोत घटना है। संवैधानिक व्यवस्थाओं द्वारा पिछली आधी शताब्दी में इतना महती, इतना व्यापक, इतना दूरगामी, इतना सकारात्मक, इतना संभावनाओं भरा कदम शायद ही कोई दूसरा संशोधन या परिवर्तन माना जाए।

इस तरह एक कानूनी परिवर्तन तथा उस पर आधारित चुनावों ने लोगों की आकांक्षाओं की पिटारी को बहुत बड़ा बना दिया है। लोगों को यह बताया जा रहा है कि अब गांवों और शहरों, दोनों में अपनी आये दिन की जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें राज्यों तथा संघीय राजधानियों की ओर ताकना नहीं पड़ेगा। अपनी खुद मुख्तारी के आधार पर, एक वित्त आयोग द्वारा नियमानुसार आबंटित वित्तीय संसाधनों के बल पर, हर जिले में संवैधानिक आधार पर बनी जिला योजना समिति द्वारा बनाई गई योजनाओं, कार्यक्रमों तथा नीतियों को लागू करके लोक-मानस में सामूहिक विकास की नई मंजिलें तय करने का सपना-सा जगा दिया गया है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर योजना बना कर राष्ट्रीय विकास की राह पर बढ़ने की कोई संवैधानिक तजवीज नहीं की गई है। दिल्ली के विशाल योजना भवन से कार्यरत आयोग का अस्तित्व एक सरकारी इशारे पर निर्भर है। फिर भी जिला स्तर की योजना समिति की संवैधानिक तजवीज चाहे कानूनविदों को एक अजूबा लगे, परंतु व्यवहार में इससे संभावनाओं के पट तो खुलते ही हैं, बशर्ते जिलों को वित्तीय संसाधनों, प्रशासनिक अधिकारों तथा तकनीकी क्षमताओं के अकाल का शिकार नहीं बनाया जाए तथा किसी प्रशासनिक अधिकारी को इस समिति का अध्यक्ष बना कर लोक भागीदारी का गला नहीं घोंटा जाए।

परंतु ऐसे वित्तीय, मानवीय, तकनीकी तथा भौतिक संसाधन उपलब्ध कराकर, निर्वाचित व्यक्ति को जिला विकास समिति की सदारत सौंप कर, नियमित रूप से इस समिति की बैठकें करवा कर, उसमें महिलाओं, अनुसूचित जनजातियों तथा अनुसूचित जातियों को आरक्षित स्थान देकर, आम जनता द्वारा सामूहिक रूप से स्वनिर्धारित तथा योजना अमल की प्रक्रिया पर समानांतर, निरंतर निगरानी रखी गई योजनाओं द्वारा क्या आम जनता की, खास कर गरीबों तथा आवश्यक जरूरतों की संतुष्टि से वंचित लोगों की सामूहिक, स्व-शक्तिकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है? स्पष्ट है हम योजना तथा विकास में लोगों की भागीदारी भर की बात नहीं कर रहे हैं। जाहिर है हम इसे अपर्याप्त, भ्रामक तथा कई बार तो विपरीत-परिणामजनक भी मानते हैं।

पंचायती राज व्यवस्था गांव या नगरीय स्तर की सरकार नहीं बन पा रही है। परंतु यदि इन संस्थाओं को वास्तविक तथा प्रभावी रूप में इस तरह की संस्था बनने का रुतबा दे भी दिया जाए, तो भी क्या हमारे विद्यमान सामाजिक ढांचे में, चालू संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के झंडे के तले, राजनीतिक दलों के चरित्र, कार्यप्रणाली और प्रभाव के साथ-साथ, शिक्षा-संस्कृति और संचार व्यवस्था के वर्तमान असमान तथा एकाधिकारिक स्वरूप के बरकरार रहते, अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों, बहुद्देश्यीय वित्तीय संस्थाओं तथा जी-7 देशों के वर्चस्व के साये में गांवों की पंचायतों तथा कस्बों और शहरों की नगरपालिकाओं के कार्यों द्वारा एक सच्चे, स्वदेशी, आत्म-निर्भर जनोन्मुख स्वराज और सुराज की आशा कर सकते हैं?

आज भारत में कहीं दबी या कहीं दबंग आवाज में कभी-कभार आज के शासन की तुलना में अंग्रेजी शासन की बढ़ाई कर दी जाती है। ऐसे विचारों की सत्यता का सवाल ही नहीं उठता। ऐसे विचार भ्रामक धारणाओं, झूठ तथा अर्द्धसत्यों, अतीत के प्रति अंधमोह पर टिके होने के साथ-साथ वर्तमान के प्रति घोर असंतोष प्रकट करने का तरीका भर ही हैं। इसलिए यह मत स्वीकार करने में शायद ही कोई हिचकिचाए कि बिना स्वराज के सुराज की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

इन मसलों पर चर्चा और विवेचन की जरूरत है। स्वराज को सुराज का मूल आधार माना गया है। राज्य संगठित तथा सर्वमान्य, सामाजिक और नैतिक शक्ति की सर्वाधिक अधिकारपूर्ण संस्था होता है। यदि यह कुछ लोगों के आधिपत्य में हो तो यह मानना मुश्किल होगा कि इसके द्वारा सबके हितों का समान और न्यायपूर्ण संरक्षण और परिपालन होगा, यानी राजकीय शक्ति का प्रयोग पक्षपातपूर्ण, राग-द्वेष-स्वार्थ पर आधारित और संकीर्ण हितों के लिए नहीं होगा। इसके कई कारण हो सकते हैं। कुछ अंशों तक तो यह भी है कि सत्ता एक ऐसा नशा होता है, जो सिर चढ़ कर बोलता है। दूसरे, अन्य लोगों के हितों की पहचान सही और सम्यक कर पाना कठिन होता है। अर्थात अपने निजी हितों की प्राथमिकता स्वाभाविक होती है और सामान्यत: दूसरे लोगों के हितों और प्राथमिकताओं को कम महत्व देने के साथ ही उनके बारे में सही और पर्याप्त सूचना पा सकना भी कोई सरल काम नहीं है। यह सही है कि कुछ ऐसे काम होते हैं जो हर किसी के लिए हितकर होते हैं, फिर भी ऐसे कामों की प्राथमिकता तथा इन कामों को अंजाम देने के तरीकों के बारे में मत-भिन्नता की काफी संभावना रहती है। परंतु अधिकांश राजकीय कामों के बारे में सारे समाज का एकमत होना ज्यादातर संभव नहीं होता है। यहां तक कि कौन-कौन सी गतिविधियां राज्य को सौंपी जाएं और किनके लिए राज्य केवल आवश्यक शांति-सुरक्षा तथा कानून-सम्मत, औचित्यपूर्ण वातावरण तैयार करे और किन कामों को राज्येतर, व्यक्तिगत और सामूहिक संस्थाओं पर छोड़ दिया जाए, आदि ऐसे मसले हैं जिन पर युगों-युगों से विवाद चला आ रहा है। सैद्धांतिक स्तर पर इन सवालों पर फैसला हो अथवा नहीं, व्यवहार में हर राज्य सत्ता अपने शक्ति संतुलन और वैचारिक प्रतिबद्धताओं को नजर में रखते हुए इन प्रश्नों का एक हल खोज कर उसे लागू करती है।

यदि राज्य चंद गैर-लोगों के हाथ की कठपुतली बन जाए तथा इसमें अधिकांश लोगों की भागीदारी तथा उनके हकूक नगण्य या महज दिखावा ही हों तो किसी भी विभेदित, स्तरीकृत, श्रेणी-विभाजित समाज में न तो वह राज्य स्वराज होगा और न सुराज ही। और ये सत्तासीन गैर-लोग यदि विदेशी हों, अपने देश के हितों के लिए अन्य देशों पर कब्जा करके शासन की बागडोर हथियाने वाले लोग हों, तब तो फिर नीम चढ़े करेले की भांति ऐसे पराधीन देशों में स्वराज के लोप के साथ-साथ सुराज भी दिन का सपना बन कर रह जाएगा। आज भारत में कहीं दबी या कहीं दबंग आवाज में कभी-कभार आज के शासन की तुलना में अंग्रेजी शासन की बढ़ाई कर दी जाती है। ऐसे विचारों की सत्यता का सवाल ही नहीं उठता। ऐसे विचार भ्रामक धारणाओं, झूठ तथा अर्द्धसत्यों, अतीत के प्रति अंधमोह पर टिके होने के साथ-साथ वर्तमान के प्रति घोर असंतोष प्रकट करने का तरीका भर ही हैं। इसलिए यह मत स्वीकार करने में शायद ही कोई हिचकिचाए कि बिना स्वराज के सुराज की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

परंतु चर्चिल जैसे कुछ लोगों ने राज-काज चला सकने की क्षमताओं के अभाव का सवाल उठाया था। निस्संदेह, शासन बिना क्षमता के नहीं चलाया जा सकता। परंतु क्षमता न तो मुख्यत: जन्मजात होती है और न ही किसी की बपौती या एकाधिकारित वस्तु। शासन संचालन ही शासन-क्षमता विकसित करने का सबसे प्रभावी स्कूल होता है। इसलिए यह मानना कि कुछ देशों के लोग शासन संचालन की दैवीय शक्ति से विभूषित हैं और कुछ देश इस क्षमता से स्थाई रूप से वंचित हैं, पूरी तरह भूल है। नौकरशाही प्रशासन क्षमता से आमतौर पर अपेक्षाकृत ज्यादा लैस होती है। परंतु नौकरशाही राज को कुशल, जवाबदेह और जनहित-प्रतिबद्ध मानना सरासर गलत होता है।

इसलिए ग्राम-स्वराज को ग्राम सुराज की कुंजी मानना पूरी तरह यथार्थपरक विचार है। क्योंकि आज ग्रामवासिनी भारतमाता अशिक्षा, गरीबी आदि से पीड़ित है, उसे राज्य सत्ता पर सीधे तथा प्रभावी हक से वंचित रखना एक भारी भूल है। आजादी के बाद भारत की राजकीय-प्रशासकीय ताकत कुछ केंद्रों में सिमट कर रह गई। आजादी की गंगा हर गांव, गली-कूचे, खेत-खलिहान तथा घर-घर तक नहीं पहुंच पाई। राजनीति कर्मियों, वेतनभोगी कर्मचारियों तथा संपन्न नागरिकों तथा व्यवसायियों की तिकड़ी ने लोकशाही के सारे अधिकार और आनंद अपनी कुंडली में बांध लिए। आधी शताब्दी का हमारा इतिहास बदलना है तो पंचायतों, ग्राम सभाओं, चौपालों को अपने संविधान-सम्मत अधिकार प्रयोग में लाने की सारी शर्तें पूरी करनी होंगी। कानून की किताब में अच्छी-अच्छी मंशाएं दर्ज कर देना भर ही पर्याप्त नहीं है। इन इरादों और संकल्पों को अमली जामा पहनाने के तौर-तरीकों और शर्तों पर विचार करके उन्हें लागू करने की प्रतिबद्धता, इस सदी के आखिरी दिनों में अपरिहार्य हो गए हैं। यदि हम चाहते हैं कि इक्कीसवीं सदी का भारत अपनी अस्मिता पहचाने, अपनी नियति की प्राप्ति की दिशा में कदम बढ़ाए तथा आज जो सबसे दीन-हीन हैं वे सत्ता के गलियारों में प्रवेश पाएं, तो संविधान में पंचायती राज संस्थाओं की जो संकल्पना की गई है उसे साकार करने के सारे कदम उठाने पड़ेंगे।

यदि हम चाहते हैं कि इक्कीसवीं सदी का भारत अपनी अस्मिता पहचाने, अपनी नियति की प्राप्ति की दिशा में कदम बढ़ाए तथा आज जो सबसे दीन-हीन हैं वे सत्ता के गलियारों में प्रवेश पाएं, तो संविधान में पंचायती राज संस्थाओं की जो संकल्पना की गई है उसे साकार करने के सारे कदम उठाने पड़ेंगे।

क्या हो सकते हैं ये कदम? पंचायती राज का मूलमंत्र सत्ता का विकेंद्रीकरण करना है। विकेंद्रीकरण इसलिए जरूरी हुआ है क्योंकि अभी हम अतिकेंद्रीकरण की स्थिति में हैं। संविधान के परिशिष्टों में उन विषयों की सूची दी गई है जिन्हें पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के हक में स्थानांतरित किया जाना है। स्पष्ट है बिना इन विषयों के बारे में संघीय तथा राज्य सरकारों की दखलअंदाजी कम किए, उन्हें महज आपसी तालमेल बिठाने तथा व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर दीर्घकालिक आयोजन तक बांधे, निचले तृणमूल स्तर तक इन विषयों पर स्थानीय लोगों की निर्णय शक्ति, निर्णय-क्षमता तथा कार्यान्वियन क्षमता नहीं बढ़ाई जा सकती। केंद्र में योजनाएं केंद्रित हो गई हैं। उत्पादन जन-कल्याण का साधन होता है। परंतु हमारी योजनाओं ने उत्पादन को साध्य बना लिया है। श्रम तथा मानवीय पूंजी के रूप में जन-गण को इस साध्य की प्राप्ति का साधन बना लिया गया है। इस तरह केंद्रीकृत योजनाओं ने जन-कल्याण के साध्य को साधन बना डाला है। केंद्रीकरण को हटा कर विकेंद्रित व्यवस्था का प्रचलन इस

विद्रूपता को समाप्त करे, इस उल्टी बहती गंगा को सही क्रम दे, यह विकेंद्रीकरण की सार्थकता के लिए अनिवार्य शर्त है। स्थानीय जन-संसाधनों, प्राकृतिक संसाधनों तथा आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक द्वारा उन्नत तथा परिष्कृत की गई परंपरागत तकनीकों को स्थानीय जनता की प्राथमिकताओं के आधार पर, उनके द्वारा, उनके लिए काम में लाने की योजनाएं बनाकर लागू करने का माध्यम बनना होगा—स्वराज-सुराज का संगम कराती पंचायती राज की संस्थाओं को। इसका अर्थ यह होगा कि योजनाओं को नौकरशाही के चंगुल से मुक्त कराना होगा। नौकरशाही को पंचायतों के जन-प्रतिनिधियों के अधीनस्थ होकर, उनके प्रति जवाबदेह होकर काम करना पड़ेगा। यह मामला केवल नियुक्ति, पदोन्नति और तबादलों भर का नहीं, बल्कि तकनीकी जानकारी लोक-प्रतिनिधियों को उपलब्ध कराने तथा प्रशासन की निरंतरता बनाए रखने का है।

नौकरशाही को पंचायतों के जन-प्रतिनिधियों के अधीनस्थ होकर, उनके प्रति जवाबदेह होकर काम करना पड़ेगा। यह मामला केवल नियुक्ति, पदोन्नति और तबादलों भर का नहीं बल्कि तकनीकी जानकारी लोक-प्रतिनिधियों को उपलब्ध कराने तथा प्रशासन की निरंतरता बनाए रखने का है।

केंद्रीय तथा राज्यों के सरकारी कर्मचारियों और विशेषज्ञों (जो आमतौर पर अपने को अधिकारी कहना पसंद करते हैं) के स्थान पर स्थानीय कर्मचारियों के हाथों निर्णय लेने की शक्ति दे देने को और उनकी केंद्र तथा राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों तथा व्यवसायियों, उद्योगपतियों से सांठ-गांठ की जगह स्थानीय व्यवसायियों, भूमिपतियों, ठेकेदारों से हुई सांठ-गांठ को पंचायती राज का असली खाका नहीं माना जा सकता है। वैसे यह परिवर्तन भी लोहे के चने चबाने से कम कठिनाई भरा नहीं है।

केंद्र तथा राज्य स्तर पर हमेशा महत्वपूर्ण निर्णय होते रहेंगे। पंचायती राज द्वारा सत्ता, शासन तथा विकास प्रक्रिया के एक बदले हुए रूप के अनुरूप केंद्र तथा राज्य की भूमिका और कार्य-प्रणाली पुनर्परिभाषित करनी पड़ेगी। यदि आने वाले एक-दो दशक में हम अपने देश के सबसे पिछड़े और दलित तबकों को (भूमिहीन मजदूरों, छोटे-मझौले किसानों, परंपरागत कारीगरों, वन संपदा से जुड़े आदिवासी लोगों, अधिकांश महिलाओं, बंधुआ और बाल-श्रमिकों, शहरी तंग और गंदी बस्तियों में रहने को विवश असंगठित क्षेत्र के मजदूरों आदि की) न्यूनतम राष्ट्रीय औसत क्षमताओं के निर्माण, शक्तिकरण तथा विकास में सक्रिय भूमिका की तरफ निश्चित प्रगति नहीं कर पाए तो पंचायती राज व्यवस्था से पैदा आकांक्षाएं असंतोष को जन्म देंगी। इन कामों के लिए पंचायतें स्वयं सम्मिलित रूप से सक्रिय की जा सकती हैं। इसी तरह भूमि का, जोतने वाले के हाथों समुचित पुनर्वितरण तथा ग्रामीण और लघु उद्योग धंधों द्वारा ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को विविधतापूर्ण तथा मजबूत बनाना, गांवों, कस्बों और शहरों में गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने के पानी, शौचालय, मकान तथा आजीविका सुरक्षा प्रदान करने संबंधी काम एक ओर पंचायतों द्वारा बखूबी अंजाम दिए जा सकते हैं, तो दूसरी ओर पंचायतों की जड़ों को मजबूत करने में सहायक भी होते हैं। मूल बात है कि राष्ट्रीय स्तर पर जनोन्मुख विकास रणनीति अपनाई जाए और उसके तहत समयबद्ध रूप से हर व्यक्ति को एक न्यूनतम जीवन स्तर तथा क्षमता अभिवृद्धि के संसाधन और अवसर प्रदान किए जाएं। पंचायत व्यवस्था ऐसी नई और अब तक उपेक्षित विकास रणनीति की एक अत्यंत उपयोगी और कारगर संस्थागत व्यवस्था हो सकती है। जमीनी स्तर पर अधिकार प्रदान किए बिना नए भारत के निर्माण की ऐसी मुहिम शुरू ही नहीं हो सकती है। इस अर्थ में पंचायती राज के प्रावधान हमारे सामाजिक-राजनीतिक ढांचे में एक बहुत खलने वाली संस्थागत कड़ी के अभाव को पूरा करते हैं। परंतु इस तरह उत्पन्न संभावनाएं बिना संस्थागत जुड़ाव, नेटवर्किंग तथा जन-आंदोलनों के, न केवल गर्भ में छिपी रह सकती हैं अपितु ठोस सत्य में परिणत नहीं हो सकने के कारण नए तनावों, झंझटों और प्रतिगामी रुझानों को भी पैदा कर सकती हैं। हमें इन तथ्यों के प्रति सक्रिय जागरूकता दिखानी होगी। ❑

पंचायती राज प्रणाली : एक लेखा-जोखा

जगमोहन माथुर

भारतीय स्वाधीनता के पांच दशकों की विभिन्न उपलब्धियों में बुनियादी स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाना सर्वथा उचित है। इस विशाल देश में जहां 95 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं, राज-काज में आम लोगों की भागीदारी का माध्यम गांवों में पंचायतें और शहरों में नगरपालिकाएं हैं। इनके बिना लोकतंत्र की जड़ें गहराई तक नहीं पहुंच सकतीं। ऐसा नहीं है कि लोकतांत्रिक संस्थाओं के महत्व को हमारे नेताओं ने स्वीकारा नहीं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी और अन्य नेताओं ने पंचायतों को सुदृढ़ करके ही ग्राम स्वराज का सपना देखा था। पर सपना देखना एक चीज है और सपने को मूर्त रूप देना दूसरी चीज। मूर्त रूप देने के लिए कई व्यावहारिक समस्याओं से जूझना पड़ता है।

1950 से ग्रामीण विकास के कई कार्यक्रम शुरू किए गए। कई समितियों ने जिनमें बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में बनी समिति प्रमुख है, पंचायतों के गठन के बारे में सुझाव दिए और 1960 के दशक में विभिन्न राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाएं स्थापित भी की गईं। पर राज्य सरकारों की उदासीनता के कारण वे निर्जीव-सी रहीं। 1978 में अशोक मेहता समिति बनी जिसमें पंचायती राज संस्थाओं के सुधार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए, पर उन पर अमल नहीं हुआ। इस प्रकार 1992 तक यानी स्वाधीनता के प्रथम 45 वर्षों में पंचायतों को सुदृढ़ और सक्रिय करने के प्रयास सफल नहीं हुए।

ऐतिहासिक मोड़ आया 1992 में जबकि संविधान में संशोधन करके पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने का निर्णय हुआ। 23 दिसंबर 1992 को संसद में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 पारित हुआ। यह वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 40 को मूर्त रूप देता है जिसमें केंद्र व राज्यों को ग्राम पंचायतों की स्थापना को बढ़ावा देने का दायित्व सौंपा गया है ताकि वे स्वशासन की प्रभावी संस्थाएं बन सकें। यह अधिनियम 24 अप्रैल 1993 से लागू हो गया।

पंचायतों में तीन स्तरों पर कुल मिला कर 34 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इनमें ग्राम स्तर पर कोई 32 लाख, मध्यवर्ती स्तर पर 1 लाख 50 हजार तथा जिला स्तर पर 16,000 निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इन्हें मिलाकर निर्वाचित प्रतिनिधियों का जितना व्यापक आधार भारत में बन चुका है, उतना बड़ा संभवतः विश्व के किसी देश में नहीं है।

इस अधिनियम के अंतर्गत देश भर में (पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों को छोड़ कर) तीन स्तरों वाली पंचायत प्रणाली लागू की गई। सबसे नीचे के स्तर पर ग्राम सभा है। गांव का हर बालिग व्यक्ति इस सभा का सदस्य होता है। पंचायत समिति, मध्यवर्ती स्तर की संस्था है जिसका गठन ब्लाक या तहसील स्तर पर होता है। जिला स्तर पर जिस संस्था का गठन किया गया है, वह है जिला परिषद। केंद्र द्वारा संविधान संशोधन पारित किए जाने के बाद राज्य सरकारों द्वारा अपने-अपने राज्य के लिए कानून बनाना था। लगभग सभी राज्यों ने केंद्रीय कानून के अनुरूप अपने-अपने यहां पंचायती राज कानून बना लिए हैं और पंचायती राज संस्थाएं बना दी गई हैं। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

बिहार, पांडेचरी तथा लक्षद्वीप को छोड़ कर शेष जगह पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव भी संपन्न हो चुके हैं। इन चुनावों के परिणामस्वरूप हमारे देश में ग्राम स्तर की दो लाख 26 हजार से अधिक पंचायतों का गठन हो चुका है। मध्य स्तर पर 5,700 से अधिक पंचायतें बन गई हैं। जिला स्तर पर 457 जिला परिषदों का गठन हो चुका है।

इन पंचायतों में तीन स्तरों पर कुल मिला कर 34 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इनमें ग्राम स्तर पर कोई 32 लाख, मध्यवर्ती स्तर पर एक लाख 50 हजार तथा जिला स्तर पर 16,000 निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इन्हें मिलाकर निर्वाचित प्रतिनिधियों का जितना व्यापक आधार भारत में बन चुका है, उतना बड़ा संभवतः विश्व के किसी देश में नहीं है।

पंचायती राज कानून की मुख्य विशेषता पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के लिए नियमित रूप से चुनाव कराने की अनिवार्यता है। पहले कुछ राज्यों में तो 20-20 साल तक चुनाव नहीं

हुए थे। नए संविधान संशोधन के बाद नियमित चुनाव कराना कितना महत्वपूर्ण है, यह 12 अगस्त 1997 को उच्चतम न्यायालय द्वारा एक रिट याचिका पर दिए गए फैसले से स्पष्ट है: अदालत ने कहा है कि संविधान में 73वें संशोधन का घोषित उद्देश्य पंचायत संस्थाओं की निरंतरता बनाए रखना और उनके कार्यकाल का नियमन करना था। संविधान की धारा 243-एच में कहा गया है कि पंचायत का कार्यकाल इसकी प्रथम बैठक के लिए निर्धारित तारीख से 5 वर्ष तक होगा और वह उसके बाद कार्य नहीं करेगी। निर्धारित समय से पूर्व भंग पंचायत के बाद गठित पंचायत भी 5 वर्ष से अधिक समय तक नहीं चलेगी। फैसले में कहा गया कि यह जोर दिया जाना आवश्यक है कि अनुच्छेद 243 का शब्दश: तथा भावना के अनुरूप पालन किया जाना चाहिए। संबद्ध राज्यों को इस बात की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे चुनाव न कराएं। बाढ़, भूकंप जैसी प्राकृतिक विपदाएं अपवाद हो सकती हैं। फैसले में कहा गया है—यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि राज्य सरकारें पंचायतों के चुनाव समय पर कराने के संवैधानिक दायित्व के प्रति असंवेदनशील रहें और पुरानी संस्थाओं को कार्यशील रहने दें। अदालत ने आशा व्यक्त की कि राज्य सरकारें पंचायती चुनाव के बारे में संवैधानिक दायित्व के प्रति सजग तथा संवेदनशील रहेंगी।

> **दूसरी समिति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में बनाई गई मुख्यमंत्रियों की समिति है जो पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों के बारे में तथा जिला ग्राम विकास एजेंसी (डी आर डी ए) को जिला परिषद को हस्तांतरित करने, राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों पर अमल करने तथा प्रशिक्षण आदि मुद्दों पर विचार करेगी तथा उपाय सुझाएगी।**

चुनाव लगभग सभी जगह हो गए हैं पर एक दुखद पहलू यह है कि ये राजनीतिक दलों के आधार पर लड़े गए हैं। इससे गुटबाजी, जो पहले राज्य स्तर तक थी, ग्राम स्तर तक पहुंच गई है। अच्छा होता ये चुनाव राजनीतिक स्पर्धा से दूर रखे जाते।

चुनावों की अनिवार्यता के अलावा इस अधिनियम की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों के लिए सभी स्तर की संस्थाओं में उनकी आबादी के अनुपात में सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों का आरक्षण किया गया है जो कि वास्तव में एक क्रांतिकारी कदम है।

पंचायतों को उचित स्थानीय कर लगाने, इकट्ठा करने और उसका उपयोग करने का अधिकार देने के अलावा इसमें राज्य की संचित निधि से पंचायतों को सहायता अनुदान देने का भी प्रावधान है। संविधान की नौवीं अनुसूची के प्रावधानों के अनुसार पंचायतों को अपने आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए 29 विषयों के संबंध में योजनाएं/कार्यक्रम तैयार करने और इन योजनाओं/कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का अधिकार भी दिया गया है।

इसके अलावा लोगों के लिए आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए उन्हें पर्याप्त शक्तियां तथा वित्त भी उपलब्ध कराना होगा। सामान्यत: ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन और विशेषत: जवाहर रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, इंदिरा आवास योजना, दस लाख कुंओं की योजना आदि ऐसे कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को पंचायतों के सुदृढ़ीकरण के परिणामस्वरूप बढ़ावा मिलेगा।

वैधानिक क्षेत्र में एक और कदम पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) कानून 1996 का पारित किया जाना है। यह कानून 24 दिसंबर 1996 से लागू हो गया। इसके अनुसार पंचायतें भारत के आठ राज्यों—आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में लागू होंगी। इसका उद्देश्य आदिवासी समाज को प्राकृतिक संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए समर्थ बनाना है। राज्य सरकारों ने इस कानून के प्रावधानों के अनुसार अपने कानून बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। पर कुछ राज्यों में केंद्रीय अधिनियम तथा राज्य कानून की व्याख्या को लेकर मतभेद हैं। इस कारण राज्यों द्वारा कानून बनाने में कठिनाई आ रही है।

इस प्रकार पंचायतों के कार्य, उनके संसाधनों के बारे में वैधानिक धरातल तो तैयार हो गया है पर अमल में कुछ कठिनाइयां भी आ रही हैं, उन पर विचार करना होगा। संविधान संशोधन लागू होने के बाद समीक्षा का प्रथम प्रयास राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान, हैदराबाद में जून 1997 में सात राज्यों के जिला परिषद अध्यक्षों के सम्मेलन में हुआ। ये राज्य थे—आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गोआ, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और उड़ीसा।

इसके बाद नई दिल्ली में अगस्त 1997 में मुख्यमंत्रियों तथा पंचायत राज्य मंत्रियों के सम्मेलन में समीक्षा हुई। इसके परिणामस्वरूप दो समितियां बनाई गईं। एक समिति राज्यों को सलाह देगी कि वे निर्धारित समय से पहले ही केंद्रीय कानून, 1996 के अनुरूप अपने-अपने कानून बना लें। दूसरी समिति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में बनाई गई मुख्यमंत्रियों की समिति है जो पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों के बारे में तथा जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डी आर डी ए) को जिला परिषद को हस्तांतरित करने, राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों पर अमल करने तथा प्रशिक्षण आदि मुद्दों पर विचार करेगी तथा उपाय सुझायेगी।

पंचायतों की एक बड़ी समस्या आवश्यक संसाधनों की रही है। इस संबंध में संविधान के अनुच्छेद 243-1 में यह प्रावधान किया गया है कि पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए राज्य वित्त आयोग बनाए जाने चाहिए जो राज्यपाल को अपनी सिफारिशें दें। कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, राजस्थान, मध्य प्रदेश, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल के राज्य वित्त आयोग की सिफारिशें राज्य सरकारों ने स्वीकार कर ली हैं। पंजाब, असम, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मणिपुर के वित्त अयोगों ने भी सिफारिशें दे दी हैं। वित्त आयोग पंचायतों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए साधन जुटाने के सुझाव देंगे। मुख्य प्रयास राज्य सरकारों को ही करना होगा। उधर

(शेष पृष्ठ 10 पर)

पंचायती राज व्यवस्था : वित्त की समस्या

डा. प्रयाग दास हजेला

पिछले पचास वर्षों में परिवर्तन की जो तीन प्रवृत्तियां काफी स्पष्ट रूप से उभर कर आई हैं, वे हैं:

न्यायोचित आर्थिक विकास की कस्में खाते-खाते हम इस पर उतर आए कि अब केवल गरीबी दूर करने पर ही ध्यान केंद्रित करें और उसमें भी पहले उनकी गरीबी दूर करें, जो न्यूनतम स्तर पर जीवन बसर कर रहे हैं। बाद में औरों को देखें।

दूसरे, ठोस और सोचे-समझे आर्थिक योजनाबद्ध विकास का प्रयास करते-करते हम इस पर आ गए कि अगर सब कुछ नहीं तो करीब-करीब सब कुछ हमें बाजार पर छोड़ देना चाहिए। वह भी अपने बाजार पर नहीं जो तकनीक, संसाधन इत्यादि के दृष्टिकोण से सक्षम नहीं है, बल्कि विदेशियों द्वारा चलाए जा रहे बाजार पर जिसे हम खगोलीकरण का नाम देते हैं।

और तीसरे, लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आस्था जताते-जताते हम यह कहने लगे कि दुनिया भर के संविधानों के निचोड़ स्वरूप सिद्धांतों के क्रियान्वयन के बावजूद हमें जमीनी स्तर पर जाना आवश्यक है, वरना हमारा आर्थिक विकास हमारे विशाल जन-समूह को छोड़ते हुए कुछ गिने-चुने तबकों में ही सिमट कर रह जाएगा।

अगर जमीनी स्तर पर जनहित के कार्य नहीं हो पा रहे हैं, तो कहीं इसलिए तो नहीं कि हम जनहित के प्रति ही गंभीर नहीं हैं? चिंता यह भी है कि अगर समष्टिभावी लक्ष्यों से भाग कर हम व्यष्टिभावी निशानों में पनाह लेते रहें, तो निराशा हाथ लगने की संभावना बढ़ जाएगी। इस बात से तो कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि स्थानीय समस्याएं अपनी विचित्रता रखती हैं और व्यष्टिभावी दृष्टिकोण अपनाए बिना और उस पर प्रभावी ढंग से अमल किए बिना, हम उन्हें हल नहीं कर सकते। परंतु विचित्रता के इन लक्षणों की समस्याओं की समानता भी अपनी जगह उतनी ही महत्वपूर्ण है और उन पर ध्यान केंद्रित करते रहना आवश्यक है।

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी, सड़कें, परिवहन जैसी वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकताओं में भिन्नताएं कम हैं, समानताएं अधिक हैं और उनसे निपटने के लिए समष्टिभावी प्रयासों की कमी के होते हुए व्यष्टिभावी प्रयास विफल हों तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। सिंचाई की सुविधा अभी भी अपर्याप्त है। प्रतिव्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धि 470-475 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के आस-पास ही स्थिर है। कुछ वर्ष पूर्व के अनुमानों के अनुसार देहातों में पेयजल 56 प्रतिशत परिवारों को भी नसीब नहीं था। ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता जिसके आधार पर कहा जाए कि स्थिति में कुछ सुधार हुआ हो। इसी तरह आवासों की पूर्ति का हाल है। लगभग 60 प्रतिशत परिवार या तो कच्चे या अधकच्चे मकानों में रहते हैं। अस्पतालों की संख्या की वृद्धि-दर में गिरावट दिखाई देती है। कुछेक निजी अस्पतालों को छोड़ कर (यद्यपि उनकी वृद्धि-दर भी गिर रही है) उनकी गुणवत्ता में कमी आई है। 1993-94 में 1960-69 के मुकाबले, सूती कपड़े की प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष पूर्ति में लगभग 2 मीटर की ही वृद्धि हो पाई।

शिक्षा का बजट राष्ट्रीय आय के 3-4 प्रतिशत से आगे बढ़ ही नहीं पा रहा है। हालांकि श्री नरसिंह राव ने अपने प्रधानमंत्री काल में ऐलान किया था कि वह नौवीं पंचवर्षीय योजना में इसे 6 प्रतिशत कर देंगे और वही व्यय कम-से-कम 6 प्रतिशत करने की बात सभी करते रहे हैं। इसी तरह स्वास्थ्य पर व्यय भी मौजूदा 4-5 प्रतिशत के अनुपात से बढ़ाकर 8 प्रतिशत करने की बात चलती रही है, जिससे हम अभी काफी दूर हैं।

प्रश्न यह है कि यदि इन आम समस्याओं की योजना बनाने और क्रियान्वित करने का कार्य विकेंद्रित कर दिया जाए, तो क्या इन पर व्यय बढ़ाना, इनके लिए संसाधन जुटाना अधिक सरल और प्रभावी हो जाएगा?

इस संबंध में एक विचारनीय मुद्दा यह हो सकता है कि हम मोटी योजनाओं को तो वैसे ही बनाएं, जैसे पहले बनाते थे, परंतु उनके स्थानीय कार्यान्वयन पर व्यष्टि स्तर के संगठनों से गहन मशवरा करें। यही नहीं, स्थानीय योजना का अंतिम रूप वही हो जो स्थानीय तथा व्यष्टि स्तर पर संबद्ध संगठन चाहते हैं। इससे दो लाभ हैं : एक तो यह कि योजना का मोटा आकार और उसका व्यय समान समस्याओं के लिए केंद्रीय स्तर पर निर्धारित होगा और दूसरा यह कि चूंकि विकेंद्रित संगठन, जो ब्लाक स्तर के हों अथवा गांव या पंचायत स्तर के, उनकी अनुमति से ही संबद्ध इलाके की योजना को अंतिम रूप दिया जाएगा। इसलिए योजना के कार्यान्वयन में उनकी दिलचस्पी भी होगी और उन्हें उसका दायित्व भी सौंपा जा सकेगा। केंद्र से इसका कार्यान्वयन चाहे संघीय हो या स्तरीय (जहां से मोटी योजनाएं बनेंगी), ठीक से चलाने में अनेक कठिनाइयां हैं। इसलिए यह दायित्व विकेंद्रित तथा स्थानीय संस्थाओं का होना कुशल कार्यान्वयन के लिए जरूरी है।

सुझाव यह है कि प्रतीकात्मक रूप में सही, लोगों की भागीदारी संसाधनों के मामले में होनी चाहिए। सरकारी हिस्सा भले ही 75 से 90 प्रतिशत हो और लोगों की हिस्सेदारी 10 से 25 प्रतिशत, लेकिन लोगों की हिस्सेदारी उनके दायित्वपूर्ण उत्साह के लिए होनी आवश्यक है।

सबसे महत्वपूर्ण मसला योजनाओं में निवेश किए जाने वाले संसाधनों का है। यह नहीं सोचा जा रहा है कि पंचायती राज व्यवस्था में जो समूह अपनी स्थानीय योजनाएं बनाएं, वही उनके लिए साधन भी जुटाएं। जिन समस्याओं की ऊपर चर्चा की गई है, वे ऐसी तो हैं कि उन्हें उन संसाधनों से हल कर सकें और उन्हें वह समूह जुटा सकें जिसके लिए योजनाएं बनाई जा रही हैं। परंतु जब उस समूह का एक बड़ा प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे है तो वह योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए पैसे कहां से देगा? रही बाकियों की बात, उनमें अधिकांशत: यही गनीमत समझते हैं कि वे गरीबी की रेखा के नीचे नहीं हैं। साधन उन्हीं मुट्ठी भर लोगों से आ सकते हैं, जिन्हें संभवत: सारी सुविधाएं पैसे के बूते पर स्वत: उपलब्ध हैं। उनकी उदारता पर कम ही निर्भर किया जा सकता है। नतीजतन प्रारंभिक योजना बनाने वालों को ही संसाधन ढूंढने पड़ेंगे और ऐसा करने की विशेष समितियों तथा विशेषज्ञों की संस्तुति भी है।

जैसे यह सुझाव दिया गया है कि राज्यों के वार्षिक योजना व्यय का पांच प्रतिशत एक स्वतंत्र राशि के रूप में जिले या उससे निचले स्तर की संस्थाओं को दिया जाए जिसे वे अपने ही विवेक से, जैसे चाहें व्यय करें। इसके अलावा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए कम-से-कम राज्य के कुल योजना व्यय का 5 प्रतिशत व्यष्टि स्तर की इकाइयों को सरकारी हिस्से के रूप में दिया जाए। शेष हिस्सा लोगों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित करने के लिए होना चाहिए। सुझाव यह है कि प्रतीकात्मक रूप में सही, लोगों की भागीदारी संसाधनों के मामले में होनी चाहिए। सरकारी हिस्सा भले ही 75 से 90 प्रतिशत हो और लोगों की हिस्सेदारी 10 से 25 प्रतिशत, लेकिन लोगों की हिस्सेदारी उनके दायित्वपूर्ण उत्साह के लिए होनी आवश्यक है। एक अन्य सुझाव के अनुसार ग्रामीण स्तर पर गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार सृजन संबंधी योजनाओं के लिए राज्यों के सालाना बजट का कम-से-कम एक प्रतिशत हिस्सा मुहैया कराया जाना चाहिए।

आखिर एक भारतीय नागरिक की कर देय क्षमता बहुत सीमित है। यदि केंद्र अधिक करारोपण करता है तो राज्य को कम करना पड़ेगा और यदि राज्य से अधिक करारोपण की आशा करता है तो केंद्र को कम करना पड़ेगा। संसाधनों की समस्या जटिल इसलिए विशेष रूप से है कि आम जनता गरीब है। इसलिए उस पर करों का बोझ एक न्यायोचित तथा समन्वित ढंग से डालना चाहिए, केवल इस आधार पर नहीं कि राजनैतिक जोखिम हम क्यों उठाएं, 'वे' उठाएं।

इसके अतिरिक्त राज्य के योजना व्यय का 30 प्रतिशत राज्य स्तर से निचले स्तर की नियोजन इकाइयों को हस्तांतरित करने का भी सुझाव है, जिसे वे उन मदों पर व्यय करें जो बताई जाएं। यह भी कहा जा रहा है कि राज्य बजट में एक अलग शीर्षक के अंतर्गत ऐसी इकाइयों को दी गई रकमों को दर्शाया जाए, ताकि व्यष्टिभावी संस्थाओं की भी वित्तीय तसवीर कुछ साफ नजर आ सके।

यह तमाम सुझाव पांच साल पहले दिए गए थे। जब राष्ट्रीय विकास परिषद की एक कमेटी से उसकी संस्तुति देने के लिए कहा गया था। उसने अपनी रिपोर्ट पेश की जिसका 19 सितंबर 1993 को परिषद की बैठक ने अनुमोदन भी कर दिया था।

देखा जा सकता है कि इन सुझावों में प्रमुख वित्तीय दायित्व का भार राज्य सरकारों पर ही है और इसी वजह से इन पर आम सहमति होने में कठिनाइयां आ रही हैं। आठवीं पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन में कहा गया है कि राष्ट्रीय विकास परिषद की संस्तुतियों पर राज्य सरकारों की मिली-जुली प्रतिक्रियाएं सामने आई हैं, कुछ राज्यों ने जैसे—आंध्र प्रदेश, पंजाब, गोवा इत्यादि ने साफ कह दिया है कि जिन रकमों को आणविक स्तर की संस्थाओं को देने की सिफारिश की गई है, वह नहीं दी जा सकती क्योंकि उनके बजट का बहुत बड़ा अनुपात सिंचाई तथा ऊर्जा पर व्यय किया जा रहा है। उनका कहना है कि अणु इकाइयों को क्या दिया जाए, यह उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए (यानी राज्य सरकारों पर)। हो सकता है कि संगठनात्मक अनिश्चय, जो पंचायती राज संस्थाओं के निर्माण में कई राज्यों में दिखाई दे रहा है, वह वित्तीय अनिश्चितता के कारण है। हालांकि कई अन्य कारण भी इसके पीछे हो सकते हैं।

वैसे वित्तीय बाधाएं ठोस संगठनात्मक निर्णयों के पीछे होना अस्वाभाविक नहीं है। भारतीय प्रशासन तथा राजतंत्र में कई व्यक्ति ऐसे हैं जो अपनी आशावादी प्रवृत्ति से इन बाधाओं को समय के साथ अपने आप दूर होना सुनिश्चित मानते हैं। लेकिन कुछ सोचते हैं कि बिना अच्छी तैयारी के ऐसे मौलिक मामलों पर फैसला लेना और फिर उनसे आधी-अधूरी प्रत्युप्लब्धियां प्राप्त करना बुद्धिमानी नहीं है। बहरहाल पंचायतों द्वारा विकेंद्रित नियोजन के फैसले को कई वर्ष हो गए हैं और उनसे अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने का प्रयास करते रहना आवश्यक है। परंतु वित्तीय संसाधनों की समस्या—अगर गरीबी और बेरोजगारी दूर करना केंद्र के लिए जटिल है तो राज्य सरकारों के लिए तो यह और भी जटिल है। अगर यह इतने थोड़े पैसों का मामला होता, जितना पंचायती राज संस्थाओं को देने की संस्तुति है (यद्यपि राज्य सरकारें उसे देने में भी कठिनाई महसूस कर रही हैं) तो अभी तक गरीबी और बेरोजगारी दूर हो गई होती।

संसाधनों का मसला आणविक स्तर पर सुलझाना, विशेषकर जब यह गरीबी के बीच बनी अनगिनत छोटी-छोटी पंचायतों का हो, बहुत कठिन है। इसे समष्टिभावी स्तर पर ही हल करने की जरूरत है।

दरअसल वृहद स्तर पर हमें बड़े-बड़े पूंजी निवेशों से ही फुर्सत नहीं मिलती कि हम पंचायतों के बारे में सोच सकें और उनसे निपटने के लिए करों, सार्वजनिक ऋण व्यवस्थाओं, विदेशी पूंजी तथा मुद्रा सृजन के बीच ताल-मेल बिठाने में ही हमारा पूरा ध्यान बट जाता है। तब भी बड़े निवेशकों के लिए हम संसाधन नहीं जुटा पाते। अब चूंकि हम खगोलीकरण, विदेशी पूंजी और तकनीक के नाम पर आई.एम.एफ. और विश्व बैंक पर आश्रित होते जा रहे हैं, जो बजट घाटे को घटाने और निजी क्षेत्र को हर मामले में प्रोत्साहित करने पर लगे हुए हैं, तो पंचायतों के लिए पर्याप्त धन कौन देगा?

इस खेल से कोई फायदा नहीं हो रहा है कि मामला राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाए। सही उपाय आर्थिक भी है और राजनीतिक भी। आर्थिक

तो इस तरह कि केंद्र तथा राज्य सरकारें अपनी कर व्यवस्था (प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों) एक ऐसे आकार में ढालें, जिसमें विभिन्न करारोपणों में कोरी प्रतिस्पर्धा न हो। आखिर एक भारतीय नागरिक की कर देय क्षमता बहुत सीमित है। यदि केंद्र अधिक करारोपण करता है तो राज्य को कम करना पड़ेगा और यदि राज्य से अधिक करारोपण की आशा करता है तो केंद्र को कम करना पड़ेगा। संसाधनों की समस्या जटिल इसलिए विशेष रूप से है कि आम जनता गरीब है। इसलिए उस पर करों का बोझ एक न्यायोचित तथा समन्वित ढंग से डालना चाहिए, केवल इस आधार पर नहीं कि राजनैतिक जोखिम हम क्यों उठाएं, 'वे' उठाएं। कृषि पर कर लगाकर संसाधन जुटाने का मामला इसी खेल में उलझा हुआ है। इसी तरह अप्रत्यक्ष करों का मसला है। केंद्र उसे उत्पाद शुल्क की शक्ल में लगाए और राज्य बिक्री कर की शक्ल में, मगर दोनों का बोझ कुल मिला कर तो उसी कर दाता पर पड़ता है। इसलिए यह कह कर अलग हो जाने से कि हम उत्पाद शुल्क घटा-बढ़ा रहे हैं, आप अपना बिक्री कर जैसा चाहें घटाएं-बढ़ाएं, बात आगे नहीं ले जा सकते।

इसी तरह अन्य कई संसाधनों का मामला है। केंद्र को यह कानूनी अधिकार है कि वह रिजर्व बैंक के माध्यम से घाटे के बजट से अपनी कमी पूर्ण कर लें। राज्यों को इतना ही अधिकार है कि वह ऋण ले सकते हैं। क्या इसमें न्याय हो पाता है? इसलिए अन्य संसाधनों के संदर्भ में भी एक समन्वित तथा वृहद दृष्टिकोण अपनाना बेहतर है। आखिर मुद्रा स्फीति का दुष्प्रभाव जो इन संसाधनों को जुटाने से उत्पन्न होता है, एक औसत भारतीय के लिए सभी राज्यों और पंचायतों में एक-समान होता है।

संसाधनों का राजनीतिक पक्ष भी है जो केंद्र तथा राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारों की भिन्नता और टकराव से पैदा होता है। ऐसी परिस्थिति में करों के मामले में या अन्य संसाधनों के मामले में समन्वित दृष्टिकोण कैसे अपनाया जाए? यह समन्वय जब उस समय नहीं हो सका, जब केंद्र तथा राज्यों में एक दल की सरकारें थीं, तो अब यह कैसे संभव हो सकेगा?

चूंकि आर्थिक सुधारों की रट में आर्थिक मुद्दों की राजनीति से मुक्ति ही एक बड़ी उपलब्धि मानी जा रही है, इसलिए संसाधनों के प्रति एक वृहद राष्ट्रीय दृष्टिकोण की आशा करना व्यर्थ है। इसीलिए जिन तदर्थ, इत्तफाकिया तरीकों से संसाधनों की समस्या से निपटा जा रहा है, उसमें अगर राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित संस्तुतियों पर पूरा अमल किया जाए तो धीरे-धीरे ही सही, इस दिशा में पंचायती राज प्रणाली कुछ मजबूती तो पकड़ेगी ही।

इसके अतिरिक्त गैर-वित्तीय रुकावटों को दूर करने का भरसक प्रयास होना चाहिए जैसे--नौकरशाही का हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए, योजना कार्यान्वियन की देख-रेख तथा मूल्यांकन, इन कार्यों को भी जहां तक हो सके, आणुविक इकाइयों पर ही छोड़ देना चाहिए।

सामान्य प्रजातंत्र तो हमारी एक-तिहाई से अधिक जनसंख्या के लिए पिछले पचास वर्षों में कोई खास काम नहीं कर सका, अब अगर उसका और अधिक विकेंद्रित रूप भी असफल हो गया, तो राजनीतिक अस्थिरता से बच पाना मुश्किल हो जाएगा। उस समय वे लोग जवाबदेही से नहीं बच पाएंगे, जो आज आर्थिक सुधारों की राजनीति से बचना चाहते हैं। ❑

(पृष्ठ 7 का शेष) पंचायती राज प्रणाली : एक लेखा-जोखा

केंद्र ने दसवें वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर सभी राज्यों तथा केंद्रशासित क्षेत्रों के लिए 5,381 करोड़ रुपये सहायता-अनुदान के रूप में सन् 1996 से 2000 तक के चार वर्षों के दौरान देने के लिए निर्धारित कर दिए हैं। इनमें 4,381 करोड़ रुपये पंचायती राज संस्थाओं के लिए तथा 1,000 करोड़ रुपये नगरपालिकाओं के लिए हैं। स्पष्ट है कि फिलहाल पंचायतों को मुख्यत: केंद्रीय या राज्यीय अनुदानों पर निर्भर रहना होगा।

केवल साधन उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा कर्मचारियों को साधनों के सदुपयोग के बारे में भी शिक्षित करना होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पंचायती राज चुनावों के फलस्वरूप विभिन्न स्तरों पर कोई 34 लाख प्रतिनिधि चुने गए हैं। इनमें से अधिकांश पहली बार चुन कर आए हैं और उनमें से लगभग एक-तिहाई महिलाएं या पिछड़े वर्ग से हैं। इन्हें पंचायतों के काम-काज के तरीकों के बारे में प्रशिक्षित करना आसान काम नहीं है। हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान; राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली ने प्रशिक्षण देने वाले प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कार्यक्रम तैयार किए हैं। पर साक्षरता की कमी को देखते हुए यह चुनौती भरा काम है।

महिलाओं को आरक्षण तो दे दिया गया है, वे सरपंच, पंच आदि चुन ली गई हैं पर अभी तक सारा काम-काज उनके पति या नजदीकी रिश्तेदार उनके नाम पर कर रहे हैं।

उम्मीद की जानी चाहिए कि ज्यों-ज्यों महिलाओं में चेतना आएगी, वे अपने वास्तविक अधिकारों का उपयोग करने में समर्थ हो सकेंगी, पर ज्यादा जरूरी है कि ग्राम सभा जो गांव के सभी बालिग लोगों का समूह है, सजग रहे। हाल में राजस्थान के राजसमंद जिले की पंचायत की महिला सरपंच ने विकास कार्यों के लिए मिली एक लाख रुपये की राशि का गबन कर लिया था, पर प्रबल जनमत के दबाव के कारण उसे वह राशि लौटानी पड़ी। पंचायतों को विकास कार्य के लिए निर्धारित धन का सही उपयोग हो, उसके लिए यह भी जरूरी है कि गांव के लोग ईमानदार प्रतिनिधि चुनें।

कुल मिलाकर पंचायती राज संस्थाएं स्थापित तो हो गई हैं, पर उन्हें वित्तीय दृष्टि से सशक्त तथा प्रशासनिक दृष्टि से कुशल होने में समय लगेगा। ❑

पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने की आवश्यकता

सुंदर लाल कुकरेजा

भारतीय लोकतंत्र पद्धति का मूल आधार पंचायती राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने जब समूहों में रहना सीखा, पंचायती राज के आदर्श और मूल सिद्धांत उसकी चेतना में विकसित होते आए हैं। इस व्यवस्था को विभिन्न कालों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता रहा। कभी वे गणराज्य कहलाए, कभी नगर शासन व्यवस्था और कभी किसी अन्य नाम से उनकी पहचान हुई, लेकिन उन सारी व्यवस्थाओं में एक-दूसरे के साथ रहने, मिल-जुल कर काम करने और अपनी तात्कालिक समस्याओं को अपने आप सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती रही। सहकारिता और आत्म निर्भरता या स्वावलंबन, इन व्यवस्थाओं का मूल मंत्र रहा है। हमारे इतिहास में जब भी शासन व्यवस्था की चर्चा हुई है, राज्य के आश्रय से अलग एक व्यवस्था का उल्लेख भी आया है। चाहे उसे राज्य पर धर्म का प्रभाव कहा जाए या पंचों की राय माना जाए, लेकिन सार्वजनिक हित में काम करने की भावना हर स्थिति में बलवती रही है और यही भावना अनेक रूपों में प्रकट होती रही है। हमारे दर्शन, ग्रंथों, इतिहास तथा साहित्य और समाज-रचना में भी सबको साथ लेकर चलने और सबके हित के लिए कार्य करने की प्रेरणा को बल मिला है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय जन-मानस की इस प्रवृत्ति को नया रूप देने का प्रयास किया कि समष्टि में ही व्यक्ति का अपना हित समाहित है। विदेशी शासन काल में व्यक्ति के सुख को जो महत्व दिया जाने लगा था, उसके निवारण का सबसे सार्थक उपाय गांधी जी ने पंचायती राज व्यवस्था को ही माना था।

बापू ने स्वतंत्र भारत में एक मजबूत पंचायती राज शासन पद्धति का सपना संजोया था जिसमें शासन कार्य की सबसे पहली इकाई पंचायतें होंगी। ये पंचायतें शासन व्यवस्था की धुरी होने के साथ ही आत्म निर्भर, पूर्णतया स्वायत्त और स्वावलंबी होने की उन्होंने परिकल्पना की थी। स्वतंत्रता के बाद महात्मा गांधी की इस परिकल्पना को साकार करने के लिए भरसक प्रयास किए गए। कभी ग्रामीण विकास के नाम पर और कभी सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से पंचायतों को लोकतंत्र का मूल आधार मजबूत बनाने के उपाए किए जाते रहे। अलग राज्यों में इसके लिए अलग-अलग परीक्षण चले, कुछ असफल रहे तो कुछ सफल भी रहे और अन्य राज्यों के लिए अनुकरणीय बने। लेकिन पूरे देश में प्रशासन का विकेंद्रीकरण करके बुनियादी स्तर पर पंचायती राज की स्थापना और जनता के हाथ में सीधे अधिकार देने की शुरुआत संविधान के 73वें संशोधन द्वारा की गई, तब पंचायतों को भी संवैधानिक मान्यता दे दी गई और सभी राज्यों में इस प्रणाली को लागू कर दिया गया। संसद और विधान सभाओं में महिलाओं को एक-तिहाई सीटों पर आरक्षण देने का मामला भले ही अभी तक राजनीतिक विवादों में दबा पड़ा हो, लेकिन पंचायत स्तर पर महिलाओं को यह अधिकार इस संशोधन द्वारा पांच वर्ष पहले ही दे दिया गया था। इससे देश में उत्तरदायी, कुशल और विकास के प्रति समर्पित नेतृत्व का एक नया वर्ग तैयार हो रहा है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होना, स्वतंत्रता के पश्चात के भारत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और उसके लाभ को सुसंगठित तथा व्यवस्थित ढंग से विकसित करने की आवश्यकता है।

संसद और विधान सभाओं में महिलाओं को एक-तिहाई सीटों पर आरक्षण देने का मामला भले ही अभी तक राजनीतिक विवादों में दबा पड़ा हो, लेकिन पंचायत स्तर पर महिलाओं को यह अधिकार इस संशोधन द्वारा पांच वर्ष पहले ही दे दिया गया था। इससे देश में उत्तरदायी, कुशल और विकास के प्रति समर्पित नेतृत्व का एक नया वर्ग तैयार हो रहा है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होना, स्वतंत्रता के पश्चात के भारत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और उसके लाभ को सुसंगठित तथा व्यवस्थित ढंग से विकसित करने की आवश्यकता है।

पंचायती राज व्यवस्था से देश को कितना लाभ हुआ, उसके उद्देश्य कहां तक पूरे हो रहे हैं और उसके लक्ष्यों की पूर्ति में हम कहां तक आगे बढ़े हैं, इसका आकलन करने के लिए हमें केवल आंकड़ों से दृष्टि हटा कर, उन आदर्शों पर ध्यान केंद्रित करना होगा जो इस व्यवस्था और शासन पद्धति के मूल आधार हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सहकारिता और स्वावलंबन इस व्यवस्था का मूल मंत्र है और इस पद्धति के आकलन में हमें इसी मानदंड को अपनाना होगा। हमें यह सोचना होगा कि अगर शासन व्यवस्था के विकेंद्रीकरण की दिशा में हम बढ़ रहे हैं तो उस प्रगति के दौरान हम उन संस्थाओं और संस्थानों को कितना मजबूत करते जा रहे हैं, जिनके

बल पर शासन का भावी ढांचा खड़ा किया जा रहा है। पंचायती राज प्रणाली वस्तुत: लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की नींव है और ऊपरी भवन बनाने से पहले हमें उसकी नींव को मजबूत बनाना होगा, उसकी कमजोरियों को दूर करना होगा। यह इस देश की विडंबना ही है कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद हमने अपनी आजादी को सुदृढ़ करने के इरादे से ऊपरी ढांचा तो बहुत सुंदर बना लिया, लेकिन गांव और पंचायत स्तर पर शासन तंत्र के विकास की महात्मा गांधी की सीख को भूल गए।

उसी भूल का परिणाम आज हमें समाज में अनेक विकृतियों और असंगतियों के रूप में देखने को मिल रहा है। आज भारत के ग्रामीण और शहरी जीवन में विषमता बढ़ रही है। देश की धन-संपत्ति का 80 प्रतिशत भाग शहरों में रहने वाली 20 प्रतिशत आबादी के लिए खर्च किया जा रहा है। ग्राम और पंचायत या प्रखंड स्तर पर उत्तरदायी नेतृत्व और शासन व्यवस्था विकसित न होने के कारण उसका विकास उपेक्षित रह गया और ग्रामीण क्षेत्र के लिए जो धन केंद्र सरकार ने आबंटित भी किया, उसका अंशमात्र ही गांव तक पहुंच सका और इसका भी कोई लेखा-जोखा नहीं रखा गया कि उस अंशमात्र का भी उपयोग किस कार्य के लिए, किस ढंग से किया गया। इसलिए गांव उपेक्षित रहे, उनके खेत, उद्योग धंधे, कारीगरी, कुटीर उद्योग और कलाएं चौपट होने लगीं। बेरोजगारी बढ़ने से लोगों का पलायन गांव से शहरों की ओर होने लगा और शहरों में भीड़ बढ़ने से नित नई आर्थिक और सामाजिक समस्याएं खड़ी होने लगीं। यह अपेक्षा की जाती थी कि पंचायती राज प्रणाली लागू होने और गांव का प्रबंध स्थानीय नेतृत्व के हाथ में जाने से इस विकृति को रोका जा सकेगा और गांव वास्तव में विकास के केंद्र बन सकेंगे। नि:संदेह इस असंगति को रोकने में पिछले पांच वर्षों के प्रयासों के बाद कुछ सफलता मिली है, फिर भी यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हमारे विकास का प्रवाह वास्तव में गांवों की ओर मुड़ चुका है। ऐसा करने के लिए हमें न केवल अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा, अपितु पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए केंद्र या राज्य सरकार अथवा उसके प्रतिनिधि सरकारी अधिकारियों के हाथों में सारे अधिकार केंद्रित करने का मोह भी त्यागना होगा। हमें अपनी इस मनोवृत्ति पर काबू पाना होगा कि गांव में बैठा व्यक्ति अपनी भलाई के बारे में नहीं सोच सकता। केवल संसद या विधान सभा से शासन चलाने की आज तक की प्रवृत्ति ने देश का विकास अवरुद्ध किया हुआ है। अब समय आ गया है कि प्रशासन का प्रवाह गांव से शहर की ओर चलने देना चाहिए।

हमें अपनी इस मनोवृत्ति पर काबू पाना होगा कि गांव में बैठा व्यक्ति अपनी भलाई के बारे में नहीं सोच सकता। केवल संसद या विधान सभा से शासन चलाने की आज तक की प्रवृत्ति ने देश का विकास अवरुद्ध किया हुआ है। अब समय आ गया है कि प्रशासन का प्रवाह गांव से शहर की ओर चलने देना चाहिए।

अधिक वित्तीय अधिकार

संविधान में संशोधन द्वारा स्थापित पंचायतों को यद्यपि यह अधिकार दिया गया है कि अपने स्थानीय मामले वे स्वयं निपटाएंगी और अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का भी उन्हें अधिकार होगा, लेकिन इस अधिकार का उपयोग करने के लिए पंचायतों को अभी तक शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं। पंचायत क्षेत्र की मामूली परियोजनाओं के लिए भी पंचायतों को धन का आबंटन केंद्र या राज्य सरका द्वारा किया जाता है और पंचायतों को स्वयं अपने वित्तीय संसाधन जुटाने के अवसर नहीं दिए जा रहे हैं। गांव में अगर टूटे खड़ंजे भी ठीक कराने हों य पंचायत भवन की गिरती दीवार का पलस्तर भी कराना हो तो उसके लि पंचायत फैसला तो कर सकती है, लेकिन उस पर अमल तभी हो सकता है ज जिलाधीश या जिलाधिकारी उसके लिए धन की स्वीकृति दे दें। लेकिन पंचायत को अगर वास्तव में स्वावलंबी बनाना है और उन्हें स्थानीय प्रशासन क जिम्मेदारी सौंपनी है तो उन्हें अधिक वित्तीय अधिकार भी देने होंगे।

पंचायतों को दिए जा सकने वाले वित्तीय अधिकार राज्य सरकार के अधिकारों से निश्चय ही भिन्न होंगे। उन्हें कर लगाने का अधिकार संभवत नहीं दिया जा सकता किंतु उन्हें यह शक्ति तो दी ही जा सकती है वि अगर पंचायत क्षेत्र में किसी काम, जिससे सार्वजनिक हित होना है जैसे—टूट सड़कों की मरम्मत, शौचालयों का निर्माण या गांव में रोशनी का प्रबंध आदि, के लिए धन की आवश्यकता हो तो पंचायतें उसे पंचायत क्षेत्र में ह नाम-मात्र का शुल्क लगा कर, वसूल कर सकें। अच्छा तो यह रहेगा वि गांव के ऐसे काम सभी ग्रामवासियों की संयुक्त भागीदारी और श्रमदान स कराने की परंपरा फिर से प्रारंभ की जाए। इससे जहां अतिरिक्त धन जुटाने की आवश्यकता बहुत सीमित हो जाएगी, वहां ग्रामीणों के बीच परस्पर सहयोग, सहभागिता और प्रेम भाव का भी विस्तार होगा। इस परिपाटी को प्रोत्साहन देने का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि लोगों की हर काम के लिए सरकार पर आश्रित रहने की आदत में भी कमी आएगी और सरका पर दबाव कम होंगे।

पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद सत्ता का विकेंद्रीकरण जिस तेजी से होना चाहिए था, वह नहीं हो पा रहा है। यह कमी योजनाओं के निर्माण और निर्धारण में सबसे अधिक दिखाई देती है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होने से पहले ही आठवीं पंचवर्षीय योजना बन चुकी थी इसलिए उस समय योजना प्रक्रिया में परिवर्तन शायद संभव नहीं थ लेकिन नौवीं योजना के निर्धारण में यह काम किया जा सकता था। किंतु इस दिशा में अब भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। अब भी योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्धारण राजधानी में बैठे लोगों द्वारा ही किया जा रह है, जिन्हें जमीनी सच्चाई की उतनी जानकारी नहीं रहती जितनी पंचायत स्तर पर काम कर रहे लोगों को रहती है। इसका परिणाम है कि ऊपर से लादी गई योजनाएं या तो पूरी नहीं हो पातीं, या उनका लाभ उन लोगों को नहीं मिल पाता जिनके लिए वह बनाई गई थीं। ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है, जब नहरों की खुदाई पर करोड़ों रुपये खर्च किए गए लेकिन उनमें पानी के प्रबंध पर ध्यान नहीं दिया गया। वैसे भी ऊपर से लादी गई योजनाओं में जनता की भागीदारी कम ही हो पाती है और यही कारण है कि अधिकांश योजनाएं कभी समय पर पूरी नहीं हो पातीं, उनकी लागत लगातार बढ़ती रहती है और योजना एक के बाद एक, अधिक महंगी और खर्चीली बन रही है।

इस स्थिति का सामना करने के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम चायतों को योजना प्रक्रिया में अधिक महत्व दिया जाए और योजना नाने की प्रक्रिया पंचायत स्तर से आरंभ करके राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर जाई जाए। फिलहाल यह प्रक्रिया ऊपर से नीचे की ओर चलती है। श में पंचायती राज को अधिक प्रभावी और सार्थक बनाने के लिए चायतों को अपने क्षेत्रों में सड़कों, बाजारों, स्कूलों, अस्पतालों, उद्योग-धों और हस्तशिल्प आदि के विकास के अवसर, अधिकार और शक्तियां दान की जानी आवश्यक हैं और एक पंचायत की ऐसी योजनाओं का न्य पंचायती क्षेत्रों की परियोजनाओं के साथ तालमेल तथा समन्वय रके उन्हें राज्य स्तर की योजनाओं में सम्मिलित किया जा सकता है।

इसका एक बड़ा लाभ यह होगा कि पंचायतों को अपने-अपने क्षेत्र की वलंत समस्याओं को हल करने की प्राथमिकता तय करने का अवसर मिलेगा और उस प्राथमिकता के आधार पर चायतें अपने क्षेत्र का अधिक विकास र सकती हैं। इससे पंचायतों को पना महत्व सिद्ध करने में मदद लेगी और उनकी स्थिति सुदृढ़ होगी।

संविधान के 73वें संशोधन में हिलाओं को पंचायतों में एक-तिहाई ारक्षण दिया गया है। कानूनी बाध्यता ने के कारण इस पर अमल भी हुआ है लेकिन अकसर यह शिकायतें भी नने को मिलती हैं कि चुनी गई महिलाओं के नाम पर उनके परिवार के रुष ही सत्ता का उपभोग कर रहे हैं। कुछ मामलों में, हो सकता है इसमें छ सच्चाई हो लेकिन उसमें दोष पंचायती राज प्रणाली का नहीं, उस पर मल का अधिक है। जितनी बड़ी संख्या में महिलाओं को पहली बार, टे स्तर पर ही सही, आगे आने का अवसर मिला है, उसमें यह बात नपेक्षित नहीं है कि कुछ महिलाएं अपने उत्तरदायित्व के अनुरूप अपने र्त्तव्य का निर्वाह नहीं कर पा रही हों। लेकिन अधिकांश महिलाएं अपने रिवेश तथा समाज में सुधार और आस-पास की समस्याओं को हल रने में उतनी ही दिलचस्पी ले रही हैं, जितनी वह अपने परिवार के ल्याण में लेती हैं। कुछ विशेषज्ञों का तो यह भी मानना है कि पंचायत सी संस्थाओं में महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक प्रभावी भूमिका भा सकती हैं। वास्तव में, संसद और विधान सभाओं में महिलाओं के ारक्षण का विरोध करने वालों को पंचायती राज के काम-काज में हिलाओं की भूमिका को देख कर अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने ी आवश्यकता है।

गांव में अगर टूटे खड़ंजे भी ठीक कराने हों या पंचायत भवन की गिरती दीवार का पलस्तर भी कराना हो तो उसके लिए पंचायत फैसला तो कर सकती है, लेकिन उस पर अमल तभी हो सकता है जब जिलाधीश या जिलाधिकारी उसके लिए धन की स्वीकृति दे दें। लेकिन पंचायतों को अगर वास्तव में स्वावलंबी बनाना है और उन्हें स्थानीय प्रशासन की जिम्मेदारी सौंपनी है तो उन्हें अधिक वित्तीय अधिकार भी देने होंगे।

लेकिन यह सच है कि पंचायतों में महिलाओं की भूमिका को अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इस उद्देश्य से दो सुझाव दिए जा सकते हैं। एक तो यह कि महिला प्रतिनिधियों को अपने क्षेत्र की समस्याओं के अध्ययन के लिए इलाके में घूमने-फिरने और लोगों से मिलने-जुलने के अधिक अवसर दिए जाएं और दूसरा उनकी समस्याओं को हल करने के लिए उन्हें प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाए। अपनी प्रामाणिकता, सरलता और कल्याण की मूल भावना को अमली जामा पहनाने में महिलाओं को ऐसे प्रशिक्षण से पर्याप्त मदद मिलेगी। ऐसा ही प्रशिक्षण पुरुष प्रतिनिधियों को भी दिया जाना चाहिए।

दूसरा उपाय, महिलाओं में जागरूकता लाने के लिए उनकी शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करने का है। यह दीर्घकालिक उपाय है, लेकिन इसके परिणाम भी दूरगामी हैं। हमारे देश में वैसे ही साक्षरता का स्तर बहुत ऊंचा नहीं है। उसमें भी महिलाओं, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा लगभग नगण्य है। जो ग्रामीण बालिकाएं आरंभिक शिक्षा के लिए स्कूलों में जाती भी हैं, उनमें अधिकांश थोड़े समय बाद ही पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर हो जाती हैं। शिक्षा के अभाव में उन्हें अपना परिवार चलाने में भी कठिनाई होती है, लेकिन अगर महिला शिक्षा को सामाजिक तथा आर्थिक विकास का साधन तथा माध्यम मान लिया जाए और उसके लिए हर संभव प्रयास किया जाए, तो कोई कारण नहीं कि पंचायतों में प्रतिनिधित्व के लिए अधिक सजग, उत्साही और कुशल महिलाएं आगे आएं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि शिक्षा और साक्षरता के विस्तार के साथ ही ग्रामीण क्षेत्र की अनेक समस्याएं, जिनका उद्‌गम अज्ञान और अभाव से होता है, स्वयं ही कम हो जाएंगी।

पंचायती राज की स्थापना अपने आपमें एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह भारत की लोक भावना और समाज की सांस्कृतिक विरासत का मूर्त रूप है। अपने नए रूप में यह पंचायत प्रणाली पिछले पांच वर्षों से काम कर रही है। इसमें कुछ कमियां पाई जा रही हैं। इन्हें दूर करके पंचायती राज व्यवस्था को और मजबूत किया जा सकता है। इस व्यवस्था में अभी जो दोष दिखाई दे रहे हैं, वह हमारी कार्यप्रणाली या अनुभवहीनता के कारण ही अधिक हैं। समय के साथ यह पद्धति हमारे लोकतंत्र की सुदृढ़ नींव और रीढ़ बनेगी। ❑

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिए। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न होना चाहिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

—सम्पादक

बाल भारती

बच्चों की संपूर्ण पत्रिका

रोचक कहानियां, मनभावन कविताएं, जानकारी भरे लेख, मजेदार चित्रकथाएं और कार्टून – जो मनोरंजन भी करें, ज्ञान भी बढ़ाएं और प्रेरणा दें – अच्छा और सच्चा बनने की।

न भूत-प्रेत, न जादू-टोना, न बेईमानी का 'शॉर्ट कट', न आलस के हवाई किले... न किस्मत का रोना। 'बाल भारती' सिखाए वैज्ञानिक समझ से चीजों को परखना और आगे बढ़ते जाना।

बाल भारती - बच्चों को लुभाए, बड़ों को भी पसंद आए।

गौरवशाली प्रकाशन का 50वां वर्ष

जून 1948 से निरंतर प्रकाशित

एक प्रति : 5 रुपये
चंदे की दरें : वार्षिक–50 रुपये, द्विवार्षिक–95 रुपये, त्रिवार्षिक–135 रुपये

पत्रिका मंगाने के लिए सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार), प्रकाशन विभाग, पूर्वी ब्लॉक–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066 के नाम बैंक ड्रॉफ्ट/मनीऑर्डर/पोस्टल ऑर्डर भेजें।

नई पंचायती राज व्यवस्था के पांच वर्ष : एक समीक्षा

प्रो. एस.एन. मिश्र*

23 अप्रैल 1998 को नई पंचायती राज व्यवस्था को लागू हुए पांच वर्ष पूरे हो रहे हैं। पांच वर्ष की अवधि कोई काफी बड़ी नहीं तो छोटी भी नहीं कही जा सकती क्योंकि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं की आयु भी पांच वर्ष ही होती है। नई पंचायती राज व्यवस्था से क्या अपेक्षाएं थीं और इन पांच वर्षों के दौरान जो उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं, उनका लेखा-जोखा करते समय सबसे पहले जो बात हमारे सामने आती है, वह यह है कि संविधान के 73वें संशोधन को लागू करने के पीछे हमारी मंशा क्या थी और राज्य सरकारों ने अपना पंचायती राज अधिनियम बनाते समय किस हद तक उस मंशा को अपने अधिनियम में समावेश किया तथा किस हद तक उसकी उपेक्षा की।

यहां सुमित्रा नंदन पंत की दो पंक्तियां बरबस याद आ जाती हैं:

भारत माता ग्राम वासिनी,
मिट्टी की प्रतिमा उदासनी।

ये पंक्तियां स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद उन्होंने शायद सामुदायिक विकास योजनाओं के लागू होने के बाद लिखी थीं। दूसरी पंक्ति के अंतिम शब्द से उनका संकेत किस ओर है, वह स्पष्ट हो जाता है। शायद गांवों की दीन-हीन दशा में कोई सुधार न देख कर उन्होंने ये पंक्तियां लिखी हों क्योंकि भारत की 74 प्रतिशत जनता आज भी गांवों में ही निवास करती है। दूसरे शब्दों में, भारत की आत्मा गांवों में ही बसी हुई है। जब तक गांवों की स्थिति में सुधार नहीं होता, सही सहभागिता के आधार पर ग्रामीण सरकार का ताना-बाना नहीं बुना जा सकता है। जब तक महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की कल्पना साकार नहीं होती, तब तक हम सही अर्थ में विकसित राष्ट्र नहीं हो सकते। चाहे भले ही हमारे वैज्ञानिक चांद पर पहुंच जाएं या पाश्चात्य देशों की सारी सुख-सुविधाएं हमारे चंद शहरों में क्यों न सिमट जाएं।

ग्राम सभाओं को सक्रिय करने की आवश्यकता

इस पृष्ठभूमि में जब हम पंचायती राज व्यवस्था के पिछले पांच वर्षों का लेखा-जोखा करने बैठे हैं, तो सबसे पहली बात जो हमारे मस्तिष्क में आती है, वह है—ग्राम सभाओं की उपादेयता। जब हमारी पहली पंचायती राज व्यवस्था सफल नहीं हो पाई, तो यह कहा जा रहा था कि ग्राम सभाओं की निष्क्रियता तथा पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं होना, इसका मुख्य कारण था। लेकिन आज जब बिहार को छोड़ कर सभी राज्यों में नई पंचायती राज व्यवस्था के तहत चुनाव हो चुके हैं और नई व्यवस्था कार्यरत है, संवैधानिक दर्जा हासिल करने के बाद भी हमारी ग्राम सभाएं उतनी सक्रिय नहीं हो पाई हैं जितनी उनसे अपेक्षा थी। यह चिंता का विषय है क्योंकि यदि हमारी बुनियादी प्रजातांत्रिक व्यवस्था सफलीभूत होनी है तो ग्राम सभाओं को जागरूक तथा संवेदनशील होना ही पड़ेगा। लेकिन पांच वर्ष का अनुभव यह बताता है कि जैसे पुरानी व्यवस्था में ग्राम सभाओं की मात्र कागजी बैठक होती थी, कुछ अपवादों को छोड़ कर आज भी कमोवेश वही स्थिति है। यहां सवाल यह उठता है कि आखिर ग्रामीण जनता की इस तरह की उदासीनता का क्या कारण है? इसका कारण यह लगता है कि आज भी ग्रामीण विकास योजनाओं का समुचित लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल पा रहा है जिससे उनके अंदर उदासीनता की भावना है। ग्रामीण जनता को ग्राम सभा के अधिकार, कर्तव्यों और उसकी उपादेयता के विषय में राष्ट्रीय स्तर की कोशिशों के बावजूद जागरूक नहीं बनाया जा सका है। जब तक ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के लाभ में ग्रामीण जनता की समुचित भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाएगी, तब तक ग्राम सभाओं की सफलता और उपादेयता पर प्रश्न चिह्न लगा ही रहेगा।

कमजोर वर्गों की भागीदारी प्रभावी हो

जिस तरह ग्राम सभाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है, उसी तरह पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षण की व्यवस्था की गई है तथा भिन्न-भिन्न राज्यों में अन्य पिछड़ी जातियों के लिए अलग-अलग प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है। ये सभी आरक्षण की व्यवस्थाएं इसलिए की गई थीं ताकि पंचायती राज व्यवस्था में समाज के बहुसंख्यक लेकिन कमजोर वर्ग का समुचित प्रतिनिधित्व हो सके और उनकी सच्ची भागीदारी से ग्राम स्वराज तथा राम राज्य का सपना साकार हो सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि विगत पांच वर्षों में जिन-जिन राज्यों में नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत चुनाव हुए, उन सभी राज्यों में इस कानूनी आरक्षण के माध्यम से इन कमजोर

*प्रोफेसर, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आई.पी. इस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली

वर्गों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया। कुछ राज्यों जैसे—कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल में तो महिलाओं की तादाद एक-तिहाई आरक्षण से भी अधिक रही। लेकिन यहां एक सवाल यह उठता है कि क्या इन वर्गों का प्रतिनिधित्व सचमुच प्रभावकारी रहा है। इस समस्या पर यदि हम विहंगम दृष्टि डालते हैं, तो इस क्षेत्र में शोध और सर्वेक्षण, इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इन कमजोर वर्गों की भागीदारी प्रभावकारी नहीं रही है। सर्वेक्षणों के आधार पर अधिकांश राज्यों में ऐसा देखा गया है कि महिला प्रतिनिधियों ने पंचायती राज संस्थाओं के संचालन में मूक तथा बधिर की ही भूमिका अदा की है और उनकी जगह उनके पति या पुत्र या परिवार का अन्य सदस्य, बैठकों में मुखर और प्रभावी रहा है।

उसी तरह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बारे में सर्वेक्षण यह बताते हैं कि आमतौर पर आरक्षित पदों पर वे ही दलित विजयी होकर आते हैं, जिनके ऊपर ग्रामीण क्षेत्र के सवर्ण बाहुबलियों का प्रभाव होता है। पंचायती राज संस्थाओं की औपचारिक बैठकों में ग्रामीण समाज के ये बाहुबलि दलित मुखौटा प्रतिनिधियों द्वारा अपना उल्लू सीधा करते हैं। आखिर क्या कारण है कि न महिलाएं और न ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग उतने प्रभावी हो पा रहे हैं, जितने होने चाहिए। अशिक्षा तथा समुचित प्रशिक्षण का अभाव और पुरानी वर्ण-व्यवस्था इसका कारण हो सकते हैं। लेकिन इसे अकर्मण्यता का सूचक नहीं मानना चाहिए। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के प्रति कई कदम उठाए गए हैं जैसे—समाज के दलित तथा कमजोर वर्गों में धीरे-धीरे जागरूकता आ रही है तथा शोषण और अत्याचार के विरोध में उनका आक्रोश भी अब मुखर होने लगा है। इस दिशा में पंचायती राज संस्थाओं का हर पांच वर्ष के अंतराल पर चुनाव, मील का पत्थर साबित होगा। अभी तो नई पंचायती राज का शिशु धीरे-धीरे बोलना और चलना सीख रहा है तथा निरंतर चुनावी प्रक्रिया आने वाले वर्षों में महिलाओं तथा कमजोर वर्गों की सहभागिता को काफी प्रभावी बना सकती है। अतः हमें निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि नई पंचायती राज व्यवस्था आखिरकार अलादीन का चिराग तो नहीं है जिससे जब जो चाहा, पा लिया। धैर्य तो रखना ही होगा।

ये सभी आरक्षण की व्यवस्थाएं इसलिए की गई थीं ताकि पंचायती राज व्यवस्था में समाज के बहुसंख्यक लेकिन कमजोर वर्ग का समुचित प्रतिनिधित्व हो सके और उनकी सच्ची भागीदारी से ग्राम स्वराज एवं राम राज्य का सपना साकार हो सके।

तीन स्तरों पर समन्वय हो

विगत पांच वर्षों में पंचायती राज व्यवस्था की एक और कमजोरी जो उजागर हुई है, वह है—पंचायती राज संस्थाओं का तीनों स्तरों में समन्वय का अभाव। अगर इसके पीछे के कारणों में हम झांकते हैं तो मुख्य रूप से जो बातें हमारे सामने आती हैं, वे हैं— (1) ग्यारहवीं सूची में वर्णित 29 विषयों का तीनों स्तरों की संस्थाओं में बंटवारे की अस्पष्टता, (2) इस बात का निर्धारण न होना कि पंचायती राज संस्थाएं सिर्फ कार्यक्रमों को लागू करने वाली इकाइयां हैं या योजना बनाने वाली भी, (3) पंचायती राज संस्थाओं और स्थानीय नौकरशाही के बीच क्या संबंध होंगे—इस पर पंचायती राज अधिनियमों का चुप रहना, तथा (4) पंचायती राज संस्थाओं तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के बीच खुली प्रतिस्पर्धा। सर्वेक्षण बताते हैं कि इन बातों को लेकर समन्वय का प्रश्न उठ खड़ा होता है जिसकी वजह से पंचायती राज संस्थाओं की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है। नई पंचायती राज व्यवस्था को 1959 का जो पंचायती राज विरासत में दिया है, उससे एकाएक पिंड छुड़ाना आसान नहीं। जो नौकरशाही ग्रामीण स्तर पर अहम् भूमिका अदा करती थी, आज के संदर्भ में पूरक भूमिका निभाने के लिए तैयार नहीं है। लेकिन निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्षों पुरानी मानसिकता को बदलने में समय तो लगेगा ही। उसी तरह पंचायती राज संस्थाओं की तीनों इकाइयों के अधिकार क्षेत्र को लेकर लक्ष्मण-रेखा खींचने की भी आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि गैर-जिम्मेदाराना अधिकार क्षेत्र अकर्मण्य बना देता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रजातांत्रिक मूल्यों के आधार पर जिम्मेदारीपूर्ण सहभागी संस्कृति का ताना-बाना फिर से बुना जाए, तभी समन्वय की समस्या का समाधान हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन उद्देश्यों तथा मूल्यों की प्राप्ति के लिए राज्यों के पंचायती राज अधिनियम में समुचित संशोधन किया जाए और राजनैतिक तथा प्रशासनिक इच्छा-शक्ति पर बल दिया जाए। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि पंचायती राज संस्थाओं को योजना बनाने तथा क्रियान्वयन दोनों में बराबर का हिस्सेदार माना जाए।

नई पंचायती राज व्यवस्था के आशानुकूल सफल न होने का एक कारण डी.आर.डी.ए. (जिला ग्रामीण विकास अभिकरण) का स्वतंत्र अस्तित्व भी है क्योंकि जितने भी कार्यक्रमों को केंद्र या राज्य सरकार अनुदान देती हैं तथा क्रियान्वित करती हैं, वे सभी डी.आर.डी.ए. के द्वारा ही लागू किए जाते हैं। परिणामस्वरूप जिला स्तर पर द्वैध शासकीय व्यवस्था का ताना-बाना बुन जाता है। यही कारण था कि 1996 में ही केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को एक सुझाव दिया गया था कि डी.आर.डी.ए. को जिला परिषद के अधीन कर दिया जाए। लेकिन अभी तक एक-आध को छोड़कर राज्य सरकारों ने कोई कदम नहीं उठाया है। इसके पीछे नौकरशाही तथा राज्य स्तरीय नेताओं के बीच मिली-भगत दिखाई देती है। अतः नई पंचायती राज व्यवस्था को सफल बनाने हेतु आज नहीं तो कल, डी.आर.डी.ए. को जिला परिषद के अधीन करना होगा।

सांसद और विधायक कोष पंचायतों को दिया जाए

इस संदर्भ में एक और प्रश्न जो हमारे सामने आता है, वह यह है कि पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद सांसद और विधायक विकास कोष की क्या सचमुच आवश्यकता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारे राजनेता इस बात से भयभीत हैं कि अगर पंचायती राज संस्थाओं को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का मौका दिया जाएगा तो जिले के अंदर और खासकर अपने-अपने प्रतिनिधित्व क्षेत्र में उनका वर्चस्व कम हो जाएगा। उस वर्चस्व को कायम रखने के लिए ही सांसद और विधायक विकास कोष को चलाया जा रहा है। अगर पंचायती राज संस्थाओं के प्रति हमारी वचनबद्धता सच्ची है और हम उन्हें सफल देखना चाहते हैं, तो क्यों नहीं

सांसद और विधायक विकास कोष को सरकारी अनुदान के रूप में पंचायती राज संस्थाओं को दे देते। इससे कुछ हद तक पंचायती राज संस्थाओं का आर्थिक भार भी कम होगा और राज्य स्तर के नेताओं तथा पंचायती राज संस्थाओं के बीच जो प्रतिस्पर्धा की खाई बनी हुई है, उसे भी पाटने में मदद मिलेगी।

इस सबके बावजूद यदि हम संविधान की धारा 243(जी) के आदर्शों के प्रति वचनबद्ध हैं तो राज्य सरकारें ग्यारहवीं सूची में वर्णित विषयों के अलावा पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय संबंधी योजनाओं और क्रियान्वयन संबंधी जिम्मेवारियां भी सुपुर्द कर सकती हैं। लेकिन शायद किसी भी राज्य में इन उपबंधों पर अमल करने की कोशिश नहीं की गई है। यह पंचायती राज संस्थाओं के प्रति राज्य सरकारों की उदासीनता का द्योतक है।

जिला नियोजन समितियों को सक्रिय किया जाए

पंचायती राज के पांच वर्षों के क्रियाकलापों पर विहंगम दृष्टि डालते हुए हमारी दृष्टि जिला नियोजन समितियों की निष्क्रियता पर अनायास ही टिक जाती है। 74वें संशोधन की धारा 243 जेड(डी) में जिला स्तर पर जिला नियोजन समितियों की संरचना को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। यहां भारत सरकार के योजना आयोग का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि योजना आयोग संविधानेत्तर इकाई होने के बावजूद काफी प्रभावशाली है और राज्य सरकारों को प्रतिवर्ष इसके सामने अपनी झोली फैलानी पड़ती है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि जिस योजना इकाई को संविधान का अंग मान लिया गया है, उसे ही निष्क्रिय बना दिया गया है। यह कैसी विडंबना है? अभी हाल ही में हमने राजस्थान राज्य के दो जिलों—अलवर और जोधपुर के जिला नियोजन समितियों का अध्ययन किया। अध्ययन से पता चलता है कि उनका गठन तो हुआ लेकिन राज्य सरकार द्वारा जो विषय-विशेषज्ञ मनोनीत किए जाने थे, वे आज तक मनोनीत नहीं हो पाए। वास्तविकता यह है कि जिला नियोजन समिति निष्क्रिय बनी हुई है।

आवश्यकता इस बात की है कि जिला नियोजन समितियों को प्रभावकारी बनाया जाए तथा पंचायती राज संस्थाओं को आश्वस्त किया जाए कि उनके द्वारा तैयार की गई योजनाओं में ऊपर की इकाइयों या सरकार द्वारा कोई विशेष उलट-फेर नहीं होगी। यह भी आवश्यक है कि जिला नियोजन समिति पंचायती राज संस्थाओं को अपनी योजनाएं बनाने के संबंध में सुझाव भी दे सकती है लेकिन पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अंतिम रूप दिए गए वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाओं में कोई उलट-फेर न किया जाए।

नई पंचायती राज व्यवस्था के आशानुकूल सफल न होने का एक कारण डी.आर.डी.ए. का स्वतंत्र अस्तित्व भी है क्योंकि जितने भी कार्यक्रमों को केंद्र या राज्य सरकार अनुदान देती हैं तथा क्रियान्वित करती हैं, वे सभी डी.आर.डी.ए. के द्वारा ही लागू किए जाते हैं। परिणामस्वरूप जिला स्तर पर द्वैध शासकीय व्यवस्था का ताना-बाना बुन जाता है। यही कारण था कि 1996 में ही केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को एक सुझाव दिया गया था कि डी.आर.डी.ए. को जिला परिषद के अधीन कर दिया जाए।

एक अन्य आवश्यकता इस बात की है कि पंचायती राज संस्थाएं सिर्फ योजनाओं को क्रियान्वित ही नहीं करें बल्कि अपने संसाधनों के अंदर अपने कार्यक्रम खुद तैयार करें और उनका वर्ष के अंत में सामाजिक आकलन हो। योजना, साल में एक बार करने वाली कसरत नहीं है बल्कि ऐसी कसरत है जिसके आधार पर भूत की पृष्ठभूमि में भविष्य की व्यूह-रचना करनी होती है। अत: आवश्यक यह है कि जिला परिषद के कार्यकाल को ध्यान में रखते हुए यानी पांच वर्षों के लिए एक दूरगामी योजना तैयार की जाए, जिसके अंदर प्राथमिकताएं इंगित हों, जिनके लिए उचित मद की व्यवस्था हो तथा जिनकी पूर्ण होने की अवधि भी सुनिश्चित हो। इस तरह की कसरत ही विकेंद्रित तथा प्रभावी नियोजन की परिकल्पना को साकार कर सकती है।

यह सही है कि विगत पांच वर्षों में गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल को छोड़ कर किसी अन्य राज्य में इस दिशा में सार्थक प्रयास नहीं हुए हैं। लेकिन इससे हमें निराशाजनक निष्कर्ष नहीं निकालने चाहिए। जिस तरह नवजात शिशु को दांत निकलने की प्रक्रिया में कुछ शारीरिक अस्वस्थता झेलनी पड़ती है, उसी तरह इन संस्थाओं के साथ भी ये समस्याएं हैं। अत: हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने के बजाय उस दिशा में सतत प्रयत्नशील तथा जागरूक रहने की आवश्यकता है।

वित्तीय अधिकार

यदि हम प्रारंभ (1959) से आज तक के पंचायती राज से संबंधित विभिन्न प्रयोगों का लेखा-जोखा करते हैं तो पाते हैं कि इनकी असफलता का मुख्य कारण आर्थिक संसाधनों का अभाव रहा है। इस कुव्यवस्था को दूर करने के लिए नई पंचायती राज व्यवस्था में कुछ ठोस कदम उठाए गए जिनका उल्लेख संविधान की धारा 243(एच) और 243(आई) में किया गया है जिनके अंतर्गत पंचायती राज संस्थाओं को कर लगाने तथा वसूलने का अधिकार दिया गया है और राज्य सरकार को हर पांच वर्ष के अंतराल पर वित्त आयोग गठित करने का निर्देश दिया गया है। यह आयोग पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए अपनी सिफारिश राज्यपाल को देगा और विधान सभा की स्वीकृति देने के बाद उस पर अमल किया जा सकता है। उसी तरह संविधान की धारा-280 में इस बात की व्यवस्था की गई है कि केंद्रीय वित्त आयोग राष्ट्रपति को पंचायती राज संस्थाओं के वित्त आधार को सुधारने के लिए राज्य की संचित निधि में से व्यवस्था की सिफारिश करे।

लेकिन इन व्यवस्थाओं के बावजूद भी अगर हम विगत पांच वर्षों का लेखा-जोखा करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक दशा कुछ अपवादों को छोड़ कर आमतौर पर वैसी ही रही है, जैसी संशोधन लागू होने से पहले थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि पंचायती राज संस्थाओं को अपने सीमा-क्षेत्र के अंदर कर लगाने तथा उसे वसूलने का अधिकार बहुत पहले से ही है लेकिन पूरी समस्या इस बात पर आकर अटक जाती है कि करों को किस अनुपात में लगाया जाए तथा उनकी वसूली कौन करे। चूंकि कर वसूली का दायित्व किसी खास अधिकारी या

खुद पंचायती राज संस्थाओं पर केंद्रित नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप कर लगाने का कागजी काम तो पूरा हो जाता है लेकिन जब वसूली की बात आती है तो वही निराशाजनक स्थिति हमारे सामने आ जाती है।

इतना तो मानना ही पड़ेगा कि मात्र केंद्र द्वारा लागू किए जाने वाले कार्यक्रमों की राशि और सरकारी अनुदान के रूप में मिली लघु राशि से ही पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक अवस्था में सुधार नहीं आ सकता। हमारे देश के कुछ राज्य इंग्लैंड के इस शताब्दी के चौथे तथा पांचवें दशक के सुधारों का अनुकरण करते हुए अपने यहां पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक अवस्था सुधारने की कोशिश कर रहे हैं जिसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली है।

1984 में लेखक ने अपने एक सर्वेक्षण अध्ययन के द्वारा बिहार तथा गुजरात के संदर्भ में यह सुझाव दिया था कि भूमि राजस्व वसूलने का अधिकार पंचायती राज संस्थाओं को सौंप दिया जाए और पारितोषिक के रूप में पंचायती राज संस्थाओं को वसूली का 50 प्रतिशत दे दिया जाए। यह व्यवस्था मात्र पंचायती राज संस्थाओं की स्थिति में ही सुधार नहीं करेगी बल्कि भू-राजस्व की वसूली का कार्य भी तत्परतापूर्वक होगा। यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हमारे प्रतिवेदनों को मानते हुए गुजरात सरकार ने भू-राजस्व की वसूली का कार्य पंचायती राज संस्थाओं के सुपुर्द किया और उससे एकत्रित की गई पूरी राशि पंचायती राज संस्थाओं को दी। इस सफलता को देखते हुए नई व्यवस्था के अंतर्गत मध्य प्रदेश सरकार ने भी भू-राजस्व की वसूली के क्षेत्र में कुछ ऐसा ही कदम उठाया है।

जब 1948 के आस-पास इंग्लैंड की स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने का सिलसिला शुरू हुआ तो सरकार द्वारा उन्हें मेल खाने वाले अनुदान (मैचिंग ग्रांट) देने की व्यवस्था शुरू हुई, जिससे समस्या का काफी समाधान हुआ। ठीक उसी तरह गुजरात और महाराष्ट्र सरकारों ने पंचायती राज संस्थाओं को मैचिंग ग्रांट देना प्रारंभ किया है जिससे उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

मुद्दा यह है कि आर्थिक स्वावलंबन के बिना हम ग्राम स्वराज और राम राज्य का सपना नहीं देख सकते। ऐसी बात नहीं है कि गांवों में संसाधनों की कमी है। आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण जनता को कर-अदायगी के प्रति जागरूक किया जाए तथा अपने दायित्वों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता सुनिश्चित की जाए। संसाधन तो अपने-आप बढ़ते जाएंगे। एक अन्य सुझाव यह है कि हर गांव में या ग्राम पंचायत के अंदर बहुत-सी बंजर पंचायत जमीन है, जिस पर खेती नहीं की जाती। जो लोग उस पर खेती करने के इच्छुक हों, पंचायत उस जमीन को उन्हें ठेके पर दे दे। उससे ग्राम पंचायत को अच्छी आमदनी हो सकती है। ठीक वैसे ही हर गांव में पंचायती चरागाह होता है। ग्राम पंचायतें ग्रामवासियों से यह आग्रह कर सकती हैं कि अपने विकास के लिए ही सही, प्रत्येक मवेशी दो रुपये प्रति माह की दर से चरागाह-कर जमा करें। इससे ग्राम पंचायतों की आर्थिक स्थिति में सुधार तो हो ही सकता है, साथ ही ग्रामीणों में कर अदा करने की आदत भी पड़ेगी। इसी तरह हर गांव में तालाब तथा पोखर होते हैं जिन पर स्वामित्व पंचायत का होता है, क्यों न वैसे तालाबों और पोखरों को और विकसित करके उनमें मत्स्य पालन कर पंचायत की आमदनी बढ़ाई जाए।

इसके अलावा साइकिल-कर, बैलगाड़ियों पर कर, हाट बाजार पर कर जिसकी व्यवस्था पहले से ही पंचायती राज अधिनियमों के अंदर है, उसे प्रभावी बना कर पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक दशा सुधारने की कोशिश की जा सकती है। इसके अलावा केंद्र सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएं और सांसद तथा विधायक विकास कोष जिसके तहत काफी राशि है, उसे पंचायती राज संस्थाओं के सुपुर्द कर दिया जाए। लेकिन हम ऐसा इसलिए नहीं करते क्योंकि जिस तरह से हमारे अंदर भ्रष्टाचार के प्रति निश्चितता आ गई है, हम पंचायती राज संस्थाओं को भी उसी चश्मे से देखते हैं। क्यों न हम कुछ समय के लिए पंच परमेश्वर पर विश्वास करें और देखें कि उनका न्याय कैसा है।

ऊपर की पंक्तियों में हमने नई पंचायती राज व्यवस्था के पांच वर्ष के क्रिया-कलाप के आधार पर कुछ मौलिक और वास्तविक कमजोरियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है और अपने ढंग से उनमें नया जोश भरने का एक प्रयास भी किया है। मुझे ग्रामीण जनता की सादगी और ईमानदारी पर काफी भरोसा है। भले ही आज उस पर एक मैली परत चढ़ गई है। राम राज्य और ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने के लिए बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संस्थाओं और सरकारी कर्मचारियों का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि उस मैली परत को हटाने के लिए हम ग्रामीण जनता की मदद करें तथा महात्मा गांधी की गांव से केंद्र की ओर जाती हुई स्वावलंबी स्वशासन की परिकल्पना को साकार करें। ❑

लघु कथा

प्रेरणा

चित्रेश

ऊपर से 'सफाई दिवस' मनाने का आदेश था। गुरू जी विद्यालय के बच्चों को लेकर गांव में सफाई करा रहे थे। एक छात्र ने पूछा—'गुरू जी, यह सफाई दिवस क्यों मनाया जा रहा है?'

'गंदगी से छुटकारा पाने के लिए।'

'क्या इस एक दिन की सफाई से गंदगी हमेशा के लिए मिट जाएगी?'

'यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन इससे लोगों को सफाई रखने की प्रेरणा तो मिलेगी ही, जो आने वाले कल के लिए महत्वपूर्ण होगी।' —गुरू जी ने समझाया और मुंह में भर आई पान की पीक को सामने वाली लिपी-पुती दीवार पर पच्च से थूक दिया। ❑

पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाने में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

डा. चंदन दत्ता

पंचायती राज पर 'संयुक्त कार्यवाही कार्यक्रम' प्रिया और उसके कालबरेटिंग नेटवर्क आफ रीजनल सपोर्ट आर्गेनाइजेशन्स (एन.सी.आर.एस.ओज़.) द्वारा 1995 के मध्य में देश के नौ राज्यों में शुरू किया गया। यह संयुक्त उद्यम प्राथमिक रूप से 73वें और 74वें संविधान संशोधन के अधिनियम के बाद स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने की प्रक्रिया के लिए हमारी प्रतिबद्धता का प्रतिबिंब था। 'प्रिया' और आठ क्षेत्रीय सहायक संस्थाएं पंचायती राज के मुद्दे पर 9 राज्यों में पिछले तीन साल से संयुक्त प्रयास कर रही हैं। यह प्रयास मुख्यत: इन सिद्धांतों पर आधारित हैं:

- पंचायतों के तीनों स्तर पर स्वशासन लागू किया जाए, न कि पंचायतें केवल केंद्र द्वारा तैयार विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए गठित की जाएं।
- क्षेत्रीय अभिशासन में महिलाओं और दलित वर्गों के कार्य, स्तर और नेतृत्व को बढ़ाने के उद्देश्य से निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी सहभागिता बढ़ाई जाए।
- महिलाओं तथा दलितों के नेतृत्व को प्रोत्साहन देते हुए पंचायत व्यवस्था को मजबूत किया जाए।
- क्षेत्रीय प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के साथ-साथ राज्य तथा केंद्र सरकार के उपलब्ध विकास संसाधनों तक भी पंचायत के तीनों स्तरों की पहुंच और नियंत्रण को बढ़ाया जाए।
- पंचायत व्यवस्था को मजबूत करते हुए उनके विभिन्न कार्यों और संबंधित व्यवस्थाओं को स्पष्ट किया जाए।

अनेक स्वैच्छिक संस्थाएं अपने क्षेत्र में पंचायती राज पर कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं के कार्य को और आगे बढ़ाने तथा प्रभावी बनाने के उद्देश्य से इस संयुक्त कार्यवाही के अंतर्गत पंचायती राज से संबंधित पांच कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं:

- प्रशिक्षण तथा अन्य कार्यक्रम द्वारा शैक्षणिक सहायता देना।
- शैक्षणिक सामग्री तैयार करना और उसे लोगों तक पहुंचाना।
- लोकाधारित सूक्ष्म-स्तरीय ग्रामीण योजना को बढ़ावा देना।
- शोध कार्य तथा प्रलेखन।

पिछले ढाई साल से प्रिया और अन्य क्षेत्रीय संगठनों द्वारा कई अध्ययन किए गए जिनमें ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत की कार्यप्रणाली पर किए गए एक अध्ययन के अनुभव इस प्रकार हैं:

स्थानीय स्वशासन—ग्राम पंचायत और ग्राम सभा का मिशन

ग्राम पंचायतों को गांव के स्तर पर स्वशासी संस्थाओं के प्रथम स्तर के रूप में परिकल्पित किया जाता है। 73वें संविधान संशोधन तथा तदनुरूपी राज्य विधानों ने भी ग्राम पंचायतों की एक स्पष्ट एवं महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित की है। ग्राम पंचायतों से गांव के स्तर पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है। उनसे मुकम्मल ग्राम-स्तरीय योजनाएं विकसित करने, राज्य और राष्ट्रीय सरकार से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने तथा प्रभावी स्वशासन के लिए समुदायों में से ही अपने खुद के संसाधन जुटाने की अपेक्षा की जाती है।

ग्राम पंचायतों के चुनाव तो बिहार के अलावा तमाम राज्यों में हो चुके हैं, किंतु ग्राम पंचायतों के काम-काज के अनुभवों को समझने की अभी शुरुआत भर हुई है। इस अध्ययन में गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के छह राज्यों की 195 ग्राम पंचायतों को शामिल किया गया। इस संक्षिप्त लेख में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूत बनाने के उद्देश्य से प्रिया और उसके नेटवर्क—कालबरेटिंग नेटवर्क आफ रीजनल सपोर्ट आर्गेनाइजेशन्स (एन.सी.आर.एस.ओज़.) के संयुक्त रूप से किए गए कार्य क्षेत्र (फील्ड वर्क) के परिणाम शामिल हैं।

ग्राम सभा किसी गांव के सभी वयस्कों से मिल कर बनती है और वह ग्राम पंचायत के लिए चुनाव का आधार होती है। ग्राम पंचायत की पारदर्शिता

और जवाबदेही सुनिश्चित करते हुए ग्राम सभा को उसकी निगरानी करने वाले निकाय के रूप में काम करना चाहिए। एक संवेदनशील, जागरूक, सक्रिय और सतर्क ग्राम सभा स्थानीय स्वशासी निकायों की प्रभावशालिता के लिए जरूरी है। इस लेख में चार राज्यों—हरियाणा, केरल, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की 195 ग्राम सभाओं के अध्ययन शामिल हैं।

प्रमुख जांच-परिणाम

ग्राम पंचायत

- अध्ययन में शामिल सभी ग्राम पंचायतों में से तकरीबन 80 फीसदी ने विभिन्न राज्यों में बनाए गए मानदंडों के अनुसार अपनी नियमित बैठकें संचालित कीं।
- सभी ग्राम पंचायत सदस्यों के तकरीबन 75 फीसदी सदस्य इन बैठकों में नियमित रूप से उपस्थित हुए।
- ग्राम पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता सरपंच/प्रधान ने की। समाज के कमजोर हिस्सों और महिलाओं की ग्राम पंचायतों की बैठकों में भागीदारी काफी असमान रही।
- ज्यादातर मामलों में ग्राम पंचायत की बैठक का मुद्दा एवं तारीख स्वयं ग्राम पंचायत के बजाय प्रखंड या जिला सरकारी कर्मियों द्वारा निश्चित की गई। ग्राम पंचायत की बैठकों की तारीख, स्थान और मुद्दे के बारे में पहले से तथा स्पष्ट सूचना का अभाव कुछ सदस्यों की अनुपस्थिति का सबसे महत्वपूर्ण कारण रहा।
- ग्राम पंचायत तथा ग्राम पंचायत के सरपंच/प्रधान और सदस्यों की भूमिकाओं के बारे में स्पष्ट समझ का अभाव ग्राम पंचायतों के काम-काज को हानि पहुंचाने वाली एक प्रमुख समस्या रही।
- राज्य विधानमंडलों में समाविष्ट विभिन्न उप-समितियों (सामाजिक न्याय, सुख-साधन, उत्पादन, कार्यकारी समिति इत्यादि) ने अध्ययन में शामिल किसी भी पंचायत में कभी काम नहीं किया। इन समितियों के उद्देश्य तथा संगठन के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है और इनको गठित करने के लिए कोई कोशिश नहीं की गई।
- इस अध्ययन का सबसे क्षोभजनक जांच-परिणाम ग्राम पंचायत की ताकत तथा सत्ता के निक्षेपण पर स्पष्ट दिशा-निर्देशों का अभाव है।

पंचायत सचिव की भूमिका

सभी राज्यों में एक सरकारी कर्मी पंचायत सचिव के रूप में कार्यकर्ता है (एक सचिव 4-7 पंचायतों को देखता है। सिवाय केरल के जहां हरेक ग्राम पंचायत के लिए एक पंचायत सचिव है)। इस व्यक्ति की भूमिका ग्राम पंचायत के काम-काज में सबसे निर्णायक रहती है। तकरीबन 80 फीसदी मामलों में ग्राम पंचायत के सरपंच/प्रधान और सदस्यों ने पंचायत सचिव के काम के बारे में शिकायत की। ग्राम पंचायत की नियमित रूप से तयशुदा बैठकों को पंचायत सचिव की आकस्मिक अनुपस्थिति के कारण रद्द करना पड़ा। उपलब्ध योजनाओं तथा संसाधनों की पूर्ण एवं स्पष्ट सूचना पंचायत सचिव द्वारा शायद ही कभी उपलब्ध कराई गई। ग्राम पंचायत में समाज के कमजोर हिस्सों से आने वाले सदस्यों और महिला सदस्यों के प्रति पंचायत सचिव का रुख ज्यादातर या तो उदासीन अथवा पूरी तरह शत्रुतापूर्ण होने की रिपोर्ट मिली।

तकरीबन 10 फीसदी मामलों में, ग्राम पंचायत के सरपंच/प्रधान और पंचायत सचिव में अच्छे संबंध थे। इसने ग्राम पंचायत को ज्यादा प्रभावशाली बनने में मदद दी। लगभग सभी मामलों में, ग्राम पंचायत और उसके नेतृत्व का अन्य सरकारी विभागों या पंचायती राज संस्थाओं के उच्चतर स्तरों से भी कोई रिश्ता नहीं था। बाहरी लोगों से पंचायत सचिव संबंध रखता था, जिसने अधिकांश मामलों में इसका उपयोग ग्राम पंचायत के काम-काज पर नियंत्रण करने के लिए किया। यह अध्ययन खुलासा करता है कि पंचायत सचिवों के पारदर्शी, जबावदेह और कुशल काम-काज को सुनिश्चित करने के लिए कारगार कदम उठाना आवश्यक है।

मध्य प्रदेश में पंचायत कर्मियों की नियुक्ति दिखाती है कि ग्राम पंचायतें सरकार द्वारा नियुक्त किए गए पंचायत सचिवों की अपेक्षा इन पंचायत कर्मियों में (ग्राम पंचायतों द्वारा नियुक्त किए गए) के साथ कहीं ज्यादा प्रभावी रूप से काम कर सकती हैं। हरेक पंचायत सचिव की ग्राम पंचायत के प्रति सीधी जबावदेही सुनिश्चित करना सबसे ज्यादा जरूरी है।

ग्राम सभा

- हरेक राज्य के मानदंडों के अनुसार ग्राम सभा की हर साल कम-से-कम दो बैठकें बुलाने की औपचारिकता अधिकांश में निभाई गई।
- हरेक राज्य द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यक कोरम इन ग्राम सभाओं की बहुत कम बैठकों में पूरा किया गया।
- तकरीबन एक-तिहाई में बैठकें न होने या कोरम पूरा न होने के बावजूद रिकार्ड पूरे किए गए।
- ग्राम सभा को समुचित महत्व न मिलने की प्रमुख वजह ग्राम पंचायत के सदस्य इसकी भूमिका को महत्वपूर्ण नहीं मानते।
- ग्राम सभा की बैठकों में कम उपस्थिति की अकेली सबसे महत्वपूर्ण वजह बैठक की तारीख, स्थान और मुद्दे के बारे में पूर्व सूचना का न दिया जाना है।
- जहां कहीं सरपंच/प्रधान और ग्राम पंचायत के सदस्यों ने ग्राम सभा के सदस्यों से पहले से सलाह-मशवरा किया है और निरंतर उनसे गांव की समस्याओं पर चर्चा बनाए रखी है, वहां ग्राम सभा में सदस्यों की भागीदारी बढ़ी और सक्रिय रही है।
- ग्राम सभा की भूमिका के बारे में असमंजस का पता तब चलता है जब बैठक में उपस्थित रहने वाले उसे या तो किसी राजनीतिक दल के कार्यक्रम या विभिन्न सरकारी योजनाओं के लाभग्राहियों की पहचान करने के अवसर के रूप में देखते हैं।
- केरल और मध्य प्रदेश के अलावा, ग्राम सभा की सलाह और सुझाव ग्राम पंचायत के लिए बाध्य नहीं हैं। वस्तुत: ग्राम सभा की बैठकें न तो गांव की प्राथमिकताएं और ग्राम पंचायत के लिए व्यापक नीतिगत ढांचा स्थापित करने का उद्देश्य पूरा करती हैं और

न ही ग्राम पंचायत के संसाधनों और फैसलों की नियमित निगरानी और जबावदेही का लक्ष्य पूरा करती हैं।

- इस अध्ययन ने यह खुलासा भी किया कि अधिकांश सरपंचों/प्रधानों में ग्राम सभा की बैठकों को ऐसे तरीके से संचालित करने के कौशल का अभाव है जिससे व्यापक भागीदारी तथा गांव को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर विचार-विमर्श को बढ़ावा मिल सके।

निहितार्थ

- ग्राम पंचायत की भूमिका के बारे में आमतौर पर ग्राम पंचायत के सदस्यों और खासतौर पर सरपंच/प्रधान को समुचित जानकारी देने की बड़ी जरूरत है।
- जहां कहीं संभव हो, स्थानीय स्वयंसेवी एजेंसियों, इच्छुक व्यक्तियों या स्कूल/कालेज के छात्रों की मदद से ग्राम पंचायत के सदस्यों और सरपंच/प्रधान को नियमित सहायता दी जानी चाहिए।
- सभी सरकारी कर्मियों मुख्यत: पंचायत सचिव को पंचायतों के अधिकारों के बारे में जानकारी देना आवश्यक है ताकि ग्राम पंचायत और उसके नेतृत्व को सही जानकारी और सहयोग मिल सके।
- हरेक ग्राम पंचायत में पंचायत सचिव की जबावदेही सुनिश्चित करने की कारगर प्रणाली विकसित करने की जरूरत है।
- ग्राम सभा के कारगर संचालन को अनिवार्य बनाने के लिए राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर संवैधानिक प्रावधान को सुदृढ़ करने की जरूरत है। ग्राम सभा की सलाह और फैसलों को ग्राम पंचायत पर बाध्य बनाया जाना चाहिए।
- व्यापक सलाह-मश्विरे द्वारा ग्राम-स्तरीय लघु योजनाओं को बनाने की प्रक्रिया को सरकार द्वारा सीधे तथा स्वयंसेवी संस्थाओं, स्कूलों/कालेजों जैसे निकायों के सहयोग से पंचायतों को बताया जाना चाहिए। इस तरह की जानकारी का, प्रगति की समीक्षा करने और भविष्य की योजना बनाने के लिए व्यवस्थित रूप से उपयोग होना चाहिए।
- ग्राम पंचायत के सदस्यों को ग्राम सभा से कारगर तौर पर मश्विरा करने और उनकी बैठकों को प्रभावशाली रूप से संचालित करने के योग्य बनाने के लक्ष्य से विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। यह गांव के स्तर पर नए नेतृत्व की क्षमता निर्मित करने की चुनौती है जिसे व्यापक स्तर पर स्वीकार किया जाना चाहिए। ग्राम पंचायत के नेतृत्व की क्षमता को बढ़ाने के लिए यात्राओं, लघुकालीन कैंपों तथा प्रशिक्षण कार्यशालाओं को चलाने की जरूरत है।

स्वयंसेवी संस्थाओं स्तर पर सूचना का फैलाव

- नए संशोधन कानून के बारे में सूचना ने स्वयंसेवी एजेंसियों को नए बदलावों के बारे में अपने संदेहों का स्पष्टीकरण करने में मदद पहुंचाई है। नए कानून की इस जानकारी ने उन्हें पंचायत और ग्राम सभा के सदस्यों को एक बेहतर तरीके से प्रेरित करने और उनका दिशा-निर्देश करने में मदद की है।
- स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित न्यूज लैटरों ने उन्हें अपने अनुभवों को बांटने और चिंता के प्रमुख मुद्दों को रोशनी में लाने में मदद की है।
- स्थानीय रूप से समझी जा सकने वाली भाषाओं में तैयार की गई शैक्षिक सामग्रियां अपने आप में बेजोड़ हैं। राज्य सरकारों ने भी सामग्रियों को मूलभूत साहित्य के रूप में मान्यता दी है। उत्तर प्रदेश में पंचायती राज संस्थान प्रशिक्षण पुस्तिका का उपयोग राजकीय ग्रामीण विकास संस्थान द्वारा नए चुन कर आए पंचायत प्रतिनिधियों के लिए अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में किया जा रहा है। मध्य प्रदेश में 'समर्थन' द्वारा तैयार की गई पुस्तिका की 1,000 से ज्यादा प्रतियां अनेक पंचायतों, स्वयंसेवी संस्थाओं, आर्थिक सहायता देने वाली संस्थाओं और सरकारी विभागों को दी गई हैं।

पंचायती राज संस्था कर्मियों के स्तर पर

- नए संशोधन के बारे में न्यूनतम जरूरी सूचना जमीनी स्तर पर पहुंची है।
- नए बदलावों के बारे में पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों के बीच बहुत-से संदेहों को न्यूज-लैटरों, अनौपचारिक बैठकों, प्रकाशित सामग्रियों और दिशामान (ओरियंटेशन) कार्यक्रमों द्वारा दूर किया गया है।
- प्रशिक्षणों के दौरान उपजी जानकारी को मजबूती देने और सूचना की खाई को पाटने के लिए यह जरूरी समझा गया कि समुदाय और पंचायतों की भागीदारी से जमीनी स्तर पर आवश्यक सूचना पहुंचाई जाए। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार में साधन-स्रोत केंद्र स्थापित किए गए। इन साधन-स्रोत केंद्रों में पंचायती राज कानूनों में संशोधन से संबंधित सूचना तथा पंचायतों से जुड़ी हुई अन्य सामग्रियां रखी जाती हैं। इसके अतिरिक्त, ये केंद्र पंचायतों और छोटी स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए सीधे-सीधे प्रासंगिक, स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर की सूचनाओं, कार्यालय आदेशों और नए कार्यक्रमों का भंडार-घर हैं।

परिवर्तन

काम करके सीखने में हमें देश भर की पंचायतों को मजबूत करने में अनेक संस्थाओं से सहयोग मिला। इसने स्थानीय ज्ञान और स्वयंसेवी एजेंसियों तथा पंचायतों की क्षमताओं ने हमारे विश्वास को मजबूत किया है। स्वयंसेवी एजेंसियों और पंचायतों के कुछ मूलभूत प्रवर्तन इस प्रकार हैं:

सहभागितायुक्त प्रशिक्षण: प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं पंचायतों की वास्तविक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए रूपांकित तथा संचालित की गईं। सहभागियों को अपने अनुभव बांटने और सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

शिक्षण सामग्रियां: इलाकों की जरूरतों के अनुसार पढ़ने-लिखने की सरल सामग्रियां तैयार की गईं। इससे निरक्षरों और नव-साक्षरों को 73वें संशोधन के प्रमुख प्रावधानों को समझने में मदद मिली।

लागत में हिस्सा बंटाना: मध्य प्रदेश जैसी कुछ जगहों पर, गांव के लोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान रहने और खाने-पीने की लागत में हिस्सा बंटाने के लिए आगे आए।

साधन-स्रोत व्यक्तियों के रूप में ग्रामवासी

हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात जैसे अनेक राज्यों में ग्रामवासियों, प्रधानों, उप-प्रधानों, स्कूली शिक्षकों, गांव के नेताओं, महिला मंडल के सदस्यों, युवा क्लबों के सदस्यों, अनुभवी और जानकार लोगों को प्रशिक्षणों में साधन-स्रोत व्यक्तियों (रिसोर्स पर्सन्स) के रूप में शामिल किया गया।

लघु नियोजन

योजना प्रक्रिया को उलटना: परंपरागत योजना प्रक्रिया ने हमेशा 'ऊपर से नीचे' का रुख अपनाया है जिसमें निर्णयों को लोगों पर थोपा जाता है। किंतु इस मामले में 'नीचे से ऊपर' का रुख अपनाया गया, जहां पंचायत स्तर पर योजना बनाने में सहभागी बनने के लिए समुदाय को गोलबंद किया गया। 'नीचे से ऊपर' योजना की रणनीति का सूत्रीकरण करने की शुरुआत से लेकर अंतिम योजना बनाने तक पंचायत प्रतिनिधियों के साथ-साथ लोगों को इसमें शामिल किया गया। इसमें निम्नलिखित चरण शामिल थे:

- समस्याओं की पहचान,
- प्राथमिकताएं बनाना,
- समस्याओं का विश्लेषण,
- कार्य-योजना बनाना,
- जिम्मेदारियां तय करना इत्यादि।

महिलाओं और पिछड़े समूहों की भागीदारी

महिलाओं, दलितों और पिछड़े समूहों को शामिल करने के सचेत प्रयास किए गए। उदाहरण के लिए, हिमाचल प्रदेश में समुदाय की समस्याओं के विश्लेषण और प्राथमिकताएं निर्धारित करने की प्रक्रिया में ये समूह सक्रिय रूप से शामिल थे।

सूचना का फैलाव

पंचायत साधन-स्रोत केंद्रों/सूचना केंद्रों की स्थापना

मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे कुछ राज्यों के क्षेत्रफलों पर गौर करते हुए और हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ पहाड़ी इलाकों में सूचना की खाइयों को पाटना पहाड़ जितना बड़ा काम था। अत: इन खाइयों को पाटने के लिए पंचायत साधन-स्रोत केंद्र (पंचायत रिसोर्स सेंटर्स—पी.आर.सी.) स्थापित करने की जरूरत महसूस की गई। अलग-अलग राज्यों में ये पंचायत साधन-स्रोत केंद्र विभिन्न स्तरों पर स्थापित किए गए हैं। जैसे—हिमाचल में पंचायत स्तर पर, बिहार में प्रखंड स्तर पर, जबकि उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में क्षेत्रीय स्तरों (3-4 जिलों के समूह) पर। अभी ये पंचायत साधन-स्रोत केंद्र छपे न्यूज लैटरों तथा खबरें, दृष्टिकोण और सूचनाएं बांटने के लिए अपने-अपने इलाकों में नियमित बैठकें आयोजित करके पंचायती राज संस्थाओं के बारे में इलाका केंद्रित सूचनाओं के संचयन, संग्रहण और प्रसार में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय स्तर पर अनुभवों को बांटने के लिए ये एक साझा मंच भी प्रदान कर रहे हैं। इनमें से कुछेक पंचायत साधन-स्रोत केंद्रों में एक छोटा पुस्तकालय भी है।

किशोरी पंचायत

क्योंकि 73वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज में महिलाओं के आरक्षण पर बल दिया है, तो किशोरी लड़कियों के एक समूह को पंचायत के भविष्य में एक भूमिका निभाने को परिकल्पित किया गया था। इन किशोरी पंचायतों को बनाने के पीछे लक्ष्य ये थे कि किशोरी लड़कियों में पंचायती राज के बारे में जागरूकता पैदा की जाए और उनकी इस समझ का उपयोग अन्य महिलाओं को प्रभावित करने में किया जाए। वर्तमान में ये किशोरी पंचायतें महिलाओं को सूचना केंद्र की बैठकों में शामिल होने और पंचायत की गतिविधियों में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित करने और गोलबंद करने में लगी हैं।

नीति निहितार्थ

- सरकार, स्वयंसेवी संस्थाओं और प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा विभिन्न राज्यों में पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशिक्षित करने के प्रयास किए गए हैं। प्रशिक्षण के लिए ज्यादा ठोस दिशा-निर्देश विकसित करने के लिए और बड़े दायरे पर नागरिक समाज की संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की सहायता से पंचायतों में प्रशिक्षण का स्तर ऊंचा उठाने के लिए रणनीतियां विकसित करने के लिए प्रशिक्षण के विविध ढांचों और पद्धतियों की कारगरता का मूल्यांकन कर लेना उचित होगा।
- विविध सरकारी/कार्यालयी आदेशों, जिला एवं प्रखंड स्तर पर पंचायतों को संसाधनों के आबंटन, पंचायतों के सफल अनुभवों और पंचायती राज संशोधनों के निहितार्थों के बारे में सूचना को पंचायतों और ग्राम सभा के सदस्यों के बीच बड़े पैमाने पर वितरित किए जाने की जरूरत है। प्रकाशनों और सूचना के प्रसार के माध्यमों के लिए उपलब्ध राजकीय संसाधनों को स्वयंसेवी संगठनों के साथ जोड़े जाने की जरूरत है।
- अनुभवों से पता चला कि सरकारी अधिकारियों और नजदीकी से जुड़े सरकारी कर्मियों जैसे—पंचायत सचिव, स्वास्थ्य सेवक, स्कूली शिक्षकों का सहायतापूर्ण रवैया महिला सरपंच और महिला सदस्यों के काम-काज को बेहतर बनाना है। सरकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण का एक रणनीतिक केंद्रीकरण कार्यक्रम महिला सरपंच/पंच के लिए ज्यादा प्रभावशाली तौर पर काम करने के लिए अनुकूल स्थितियां तैयार करेगा। ❑

पंचायतों में महिलाएं : जरूरत है सक्रिय भूमिका की

श्रीवल्लभ शरण

पंचायतों में महिलाओं की भूमिका पंचायतों के व्यापक संदर्भ में ही समझी जानी चाहिए। यह निर्विवाद और बिल्कुल स्पष्ट रहना चाहिए कि पंचायती राज केवल वर्तमान प्रशासन तंत्र का केन्द्र या राज्य से गांव तक विस्तार नहीं है बल्कि यह सामाजिक समता और न्याय, आर्थिक विकास और व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित ग्रामीण जीवन को नया कलेवर देने का एक सामूहिक प्रयास है। लोकतंत्र का लक्ष्य यदि लोगों के द्वारा लोकहित में प्रशासन है तो जिस हद तक संभव हो, उस हद तक प्रशासन में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करना लोकतंत्र का एक आवश्यक तत्व है। राज्य के वर्तमान संश्लिष्ट स्वरूप को देखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में केवल ग्रामीण स्तर पर ही लोगों की सामूहिक भागीदारी संभव है। ग्राम पंचायत की विशेषता इसमें है कि वह ऐसी सामूहिक भागीदारी सुनिश्चित कराए जिसमें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों का सदुपयोग हो सके और आर्थिक विकास के साथ ही जीवन के दूसरे पक्ष भी सबके हित में विकसित हों। महिलाओं के पर्याप्त योगदान के बिना यह संभव नहीं हो सकता। इसलिए महिलाओं की भागीदारी पंचायती राज का अनिवार्य अंग है।

संविधान ने तो महिलाओं के लिए अवसर के द्वार प्रारंभ से ही खोल रखे हैं मगर सामाजिक कुसंस्कारों ने इन अवसरों को घेर रखा है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण विरासत है। इसलिए जरूरत पड़ी आरक्षण की ताकि ये बेड़ियां हटें और महिलाएं देश के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में अपनी भूमिका निभाने में आगे आएं।

महिला आरक्षण

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तिकरण के लिए हो रहे प्रयासों का प्रमुख अंग है और 1957 से ही इसके लिए प्रयास हो रहे हैं। बलवंत राय मेहता समिति ने महिलाओं तथा बच्चों से संबंधित कार्यक्रमों को देखने के लिए जिला परिषद में दो महिलाओं को लाने की अनुशंसा की थी। 'भारत में महिलाओं का स्थान' विषय पर गठित समिति ने 1974 में अनुशंसा की थी कि ऐसी पंचायतें बनाई जाएं, जिनमें केवल महिलाएं हों। 1978 में अशोक मेहता समिति ने अनुशंसा की कि दो महिलाओं को, जिन्हें सबसे अधिक वोट मिलें, जिला परिषद का सदस्य बनाया जाए। 'नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फार दि विमेन 1988' ने ग्राम पंचायत से लेकर जिला परिषद तक 30 प्रतिशत सीटों के आरक्षण की अनुशंसा की थी।

पंचायत के हर स्तर पर एक-तिहाई महिलाएं तो निर्वाचित हुई ही हैं, कुछ राज्यों में वे बड़ी संख्या में चुनी गई हैं। कर्नाटक में ग्राम पंचायत के स्तर पर 46.7 प्रतिशत, पंचायत समिति के स्तर पर 40.2 प्रतिशत और जिला पंचायत में 36.5 प्रतिशत महिलाएं हैं। मध्य प्रदेश की ग्राम पंचायत में 38 प्रतिशत महिलाएं हैं और पश्चिम बंगाल में वे 35.4 प्रतिशत हैं। उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत के स्तर पर उनका प्रतिनिधित्व 36.4 प्रतिशत है।

कर्नाटक पंचायत अधिनियम 1983 में महिलाओं के लिए 25 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान था। हिमाचल प्रदेश के अधिनियम में भी वैसा ही प्रावधान था। मध्य प्रदेश के 1990 के अधिनियम में ग्राम पंचायत में महिलाओं के लिए 20 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था थी और जनपद तथा जिला परिषद के स्तर पर 10-10 प्रतिशत की। महाराष्ट्र पंचायत अधिनियम में 30 प्रतिशत और उड़ीसा अधिनियम में कम-से-कम एक-तिहाई आरक्षण का प्रावधान संविधान में हुए 73वें संशोधन से पहले से रहा है।

भारतीय संविधान के 73वें संशोधन ने पंचायत के विभिन्न स्तरों पर पंचायतों के सदस्य और उनके प्रमुख—दोनों पदों पर महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था की ताकि देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में अपेक्षित संतुलन आए। इस संशोधन के द्वारा संविधान में एक नया खंड—खंड (9) और उसके अंतर्गत 16 अनुच्छेद जोड़े गए हैं। अनुच्छेद 243 (द) (3) के अंतर्गत महिलाओं की सदस्यता और अनुच्छेद 243 (द) (4) में उनके लिए पदों पर आरक्षण का प्रावधान है। अनुच्छेद 243 (द) के अनुसार अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में उपरोक्त प्रकार का आरक्षण करना है और उनके बीच से भी महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई स्थान आरक्षित होने हैं। दूसरे शब्दों में, यदि अनुसूचित जाति के लिए किसी पंचायत में 5 स्थान आरक्षित होते हैं, तो उनमें से कम-से-कम एक-तिहाई, यानी 2 स्थान उस जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की अनिवार्यता नहीं है और यह विषय राज्य के विधान मंडलों पर छोड़ दिया गया है। अनुच्छेद 243 (द) (6) के अंतर्गत वे चाहें तो आरक्षण कर सकते हैं और आरक्षण कितना तथा किन स्तरों पर होगा, यह निर्णय भी राज्य के विधान मंडलों के ऊपर है।

अनुच्छेद 243 (न) के अनुसार राज्य सरकारों को संविधान संशोधन लागू होने (24 अप्रैल 1993) के एक वर्ष के भीतर अपने राज्यों के अधिनियमों में संविधान के प्रावधानों के अनुकूल संशोधन कर लेना था। चूंकि यह प्रावधान अनिवार्य था, इसलिए राज्य सरकारों ने 24 अप्रैल 1994 तक वैसा कर लिया। जहां पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश ने अपने अधिनियमों में आवश्यक संशोधन किया, वहीं दूसरे राज्यों में नये अधिनियम बने। चूंकि पंचायत राज्य का विषय है (संविधान की सातवीं अनुसूची, सूची-2, क्रमांक-5), वैसा करना आवश्यक था। महिलाओं (जिनमें अनुसूचित जाति तथा जनजाति की महिलाएं शामिल हैं) के लिए आरक्षण अनिवार्य होने के कारण सभी राज्य अधिनियमों में उसका प्रावधान कर दिया गया है।

अनेक राज्यों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए भी आरक्षण किया गया है—महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में कुल स्थान का सत्ताइस प्रतिशत, बिहार में जनसंख्या के अनुपात में, आंध्र प्रदेश में कुल सीटों की एक-तिहाई, आदि। जहां-जहां, अन्य पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित हैं, वहां उन वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों में से कम-से-कम एक-तिहाई स्थान आरक्षित हैं। जहां वैसा नहीं है, जैसे तमिलनाडु, वहां अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाएं, आम महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों में से आएंगी। इस प्रकार प्रत्येक राज्य में महिलाओं के लिए पंचायत के विभिन्न स्तरों पर स्थान आरक्षित हैं, सिवा उन क्षेत्रों को छोड़कर जहां अनुच्छेद 243 (म) के अंतर्गत संवैधानिक संशोधन लागू नहीं हैं।

ग्राम सभा

संवैधानिक संशोधन की एक विशेषता, ग्राम-सभा का निर्माण है। ग्राम सभा के क्या अधिकार और कर्तव्य होंगे, यह राज्य विधान मंडलों पर छोड़ दिया गया है और राज्य के अधिनियमों में इस संबंध में भिन्नता है। पंजाब और तमिलनाडु में ग्राम सभा को योजना, बजट और कार्यक्रमों को स्वीकृत करने का अधिकार है। अधिकांश राज्यों में ग्राम सभाएं विभिन्न विषयों पर विचार करेंगी और पंचायतों का यह कर्तव्य है कि ग्राम सभा के सुझावों पर विचार करें। बिहार, असम और मध्य प्रदेश में ग्राम सभा की अनिवार्य बैठकें साल भर में कम-से-कम चार बार होंगी, तमिलनाडु में तीन बार, त्रिपुरा में केवल एक बार और शेष राज्यों में दो बार। ग्राम पंचायतों की बैठकों में भी भिन्नता है—माह में दो बार से लेकर तीन महीने में एक बार तक। पंचायतों के अधिकारों और कर्तव्यों में भी, विभिन्न राज्यों में भिन्नता है। बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में न्याय पंचायत भी है। शेष राज्यों में वे मुख्यत: विकास के कार्यों से संबद्ध हैं और आम प्रशासन के कुछ कार्य भी उन्हें दिए गए हैं।

अधिकांश राज्यों में ग्रामीण विकास के लगभग सभी विषय पंचायतों को दे दिए गए हैं। राज्य वित्त आयोग के भी गठन का प्रावधान किया गया है जो राज्य और पंचायती राज संस्थाओं के बीच वित्त के वितरण के विषय में अपनी अनुशंसाएं देगा। अब तक पंद्रह राज्यों के वित्त आयोगों ने अपनी अनुशंसाएं दे दी हैं। केरल, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में अनुशंसाओं का कार्यान्वयन भी हो रहा है, इससे पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ होगी। इस प्रकार, संवैधानिक संशोधन के आलोक में जो नई पंचायतें आई हैं, वे पहले की पंचायतों की अपेक्षा अधिक सशक्त और व्यापक कार्य-क्षेत्र वाली हैं।

यह भी स्मरणीय है कि पंचायतें विधान सभा या संसद से भिन्न हैं। विधान सभा तथा संसद विधायिका हैं और संविधान के अंतर्गत उनका मुख्य कार्य कानून बनाना है। कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व सरकार (कार्यपालिका) पर है। पंचायत की स्थिति भिन्न है। इन्हें कार्यपालिका और विधायिका (जैसे विनियम बनाने की शक्ति) दोनों मिली हुई हैं। जहां न्याय-पंचायत है, पंचायतों को कुछ अंश तक न्यायपालिका की भी शक्ति प्राप्त है। अतएव, पंचायतें प्रशासन के सभी पक्षों को छूती हैं। उनके कार्य-क्षेत्र का स्वरूप बहुत विस्तृत है और यदि वे सशक्त रूप से काम करें, तो लोक-जीवन को बहुत प्रभावित कर सकती हैं।

महिलाओं की भूमिका

इस परिप्रेक्ष्य में, देश की वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति और शैक्षणिक एवं सामान्य चेतना के स्तर को देखते हुए, यह प्रश्न अनेक लोगों के मन को झकझोर रहा है कि क्या महिलाएं पंचायतों में सदस्य और अध्यक्ष के रूप में, अपनी भूमिका ठीक तरह से निभा पाएंगी? संख्या की दृष्टि से, पंचायतों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व प्रभावी है। महाराष्ट्र की तरह, मध्य प्रदेश की सात और पश्चिम बंगाल तथा त्रिपुरा की एक-एक ग्राम पंचायत पूर्णत: महिला पंचायतें हैं। पंच से लेकर सरपंच तक सभी महिलाएं ही हैं।

पंचायत के हर स्तर पर एक-तिहाई महिलाएं तो निर्वाचित हुई ही हैं, कुछ राज्यों में वे बड़ी संख्या में चुनी गई हैं। कर्नाटक में ग्राम पंचायत के स्तर पर 46.7 प्रतिशत, पंचायत समिति के स्तर पर 40.2 प्रतिशत और जिला पंचायत में 36.5 प्रतिशत महिलाएं हैं। मध्य प्रदेश की ग्राम पंचायत में 38 प्रतिशत महिलाएं हैं और पश्चिम बंगाल में वे 35.4 प्रतिशत हैं। उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत के स्तर पर उनका प्रतिनिधित्व 36.4 प्रतिशत है। इस प्रकार केवल सदस्यों के स्तर पर ही नहीं, पंचायत अध्यक्ष के स्तर पर भी अनेक राज्यों में, महिलाओं का प्रतिनिधित्व निर्धारित न्यूनतम अनुपात से ज्यादा है।

यह एक उपलब्धि है और यदि जन-जागरण का अभियान निष्ठापूर्वक चले और महिलाएं पंचायतों के कार्यों से सक्रिय भूमिका निभाएं, तो ग्रामीण जीवन में एक अभूतपूर्व निखार आ सकता है। प्रश्न यह है कि इसे कैसे संभव बनाया जाए? इसके विपरीत, चूंकि वे बहुत बड़ी संख्या में आई हैं और यदि उन्होंने अपने उत्तरदायित्व का ठीक से पालन नहीं किया, तो इसका प्रतिकूल प्रभाव भी अवश्यंभावी है और संवैधानिक प्रावधान मात्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज बनकर रह सकता है।

महिला साक्षरता की स्थिति

पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, स्त्रियां घर में और पुरुष बाहर आदि जैसी परंपराओं ने स्त्रियों को सामाजिक जीवन की मुख्य धारा से अलग रख छोड़ा है। शिक्षा की कमी अभिशाप बनी बैठी है। 1901 में स्त्रियों के बीच साक्षरता 0.6 प्रतिशत थी, 1991 की जनगणना में वह 39.3 प्रतिशत पर पहुंची और देहाती क्षेत्रों में वह 30.62 प्रतिशत पर अटकी हुई है। राज्यों के बीच भारी भिन्नता है। देश के 73 जिलों में महिला साक्षरता

20 प्रतिशत से कम है—राजस्थान के जालौर में 7.75 प्रतिशत, बाड़मेर में 7.68 प्रतिशत, बिहार के किशनगंज में 10.38 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश के महराजगंज में 10.28 प्रतिशत स्त्रियां ही साक्षर हैं। बिहार के देहाती क्षेत्रों में स्त्रियों के बीच साक्षरता 17.95 प्रतिशत है, मध्य प्रदेश में 19.73, उत्तर प्रदेश में 19.02 और राजस्थान में 19.59 प्रतिशत।

अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की महिलाओं के बीच साक्षरता की स्थिति का बदतर रहना स्वाभाविक ही है। बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की 5.54 प्रतिशत, राजस्थान में 4.73 और उत्तर प्रदेश में 8.47 प्रतिशत स्त्रियां ही साक्षर हैं। अनुसूचित जनजाति की स्त्रियों की स्थिति और नीचे है। आंध्र प्रदेश में 7.29 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 9.74 प्रतिशत, उड़ीसा में 9.30 प्रतिशत और राजस्थान में 3.64 प्रतिशत ग्रामीण स्त्रियां ही साक्षर हैं।

पंचायतों में आने के लिए शिक्षा आवश्यक नहीं है, मगर पंचायतों को चलाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता कोई कैसे नकार सकता है? अधिनियम और नियम; सरकारी आदेश और परिपत्र; विकास की योजनाएं; सामाजिक समस्याएं; बैंकों और संस्थाओं से संपर्क—इन सबके लिए शिक्षित होना आवश्यक है ही। पंचायतों के सफल संचालन के लिए निरक्षर पंचों का, स्त्री हों या पुरुष—साक्षर होना नितांत आवश्यक है और यह दायित्व उन सबका है, जो पंचायतों के लिए कार्य कर रहे हैं, भीतर से या बाहर से।

महिलाओं को प्रशिक्षण

स्थिति विषम है और इससे अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। मगर समाधान स्त्रियों को बनी-बनाई लीक पर छोड़ देना नहीं, अपितु उन्हें सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह से उतारना है। 73वें संवैधानिक संशोधन ने उसी का प्रयास किया है। आवश्यकता इस बात की है कि देहाती क्षेत्रों में रहने वाले आम लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को, पंचायती राज से संबंधित संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों से अवगत कराया जाए। विकास के क्षेत्र में हो रहे विभिन्न कार्यों की उन्हें जानकारी दी जाए। शिक्षा, स्वास्थ्य, बागवानी, पेयजल, बच्चों की देखभाल आदि में स्त्रियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। सामान्य जागृति सबके लिए आवश्यक है। मगर जो स्त्रियां, पंचायत के पदों पर चुनकर आएंगी, उन्हें उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, बैठक संचालन की विधि और लेखा के रख-रखाव, आदि का भी गहन प्रशिक्षण मिलना चाहिए ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सक्षम बन सकें। इस कार्य में सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं, प्रचार माध्यमों— अखबार, रेडियो, टी.वी. आदि की बहुत बड़ी भूमिका है। कई गैर-सरकारी संस्थाएं देश के विभिन्न भागों में जन-जागरूकता का कार्य कर रही हैं। उससे बदलाव आ रहा है। बड़ी संख्या में स्त्रियां बैठकों/कार्यशालाओं में आती हैं और गहरी दिलचस्पी से संबद्ध कार्यकलापों में भाग लेती हैं। देश के स्तर पर लगभग 7.5 लाख महिलाएं चुनकर आई हैं। उन्हें प्रशिक्षित करना बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है और इसे निभाना पंचायती राज व्यवस्था की सफलता की शर्त है। पंचायत की सफलता देश की प्रगति की शर्त है।

इसमें संदेह नहीं कि समाज करवट ले रहा है; स्त्रियों में जागृति आई है; शिक्षा के प्रति उनका रुझान बढ़ा है; पर्दा-प्रथा विदाई के रास्ते पर है; स्त्रियों की आवाज सशक्त हो रही है—मगर यात्रा काफी लंबी है। यह तो महिला सशक्तिकरण का पहला अध्याय मात्र ही है। आरक्षण से एक रास्ता बना है, मगर रास्ते में पत्थर तथा कांटे बहुत हैं और समाज के समुचित विकास के लिए अभी तो अनेक रास्ते और खुलने हैं।

आरक्षण का पूरा लाभ तभी मिलेगा, जब आम लोग, विशेषत: सदियों से प्रताड़ित गरीब, अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जातियों के लोग और महिलाएं—ग्राम सभा और पंचायतों की बैठकों में जाएं, बैठक की कार्यवाही में भाग लें और वहां अपने विचारों को रखें और लिए गए निर्णयों के कार्यान्वयन में सक्रिय भूमिका अदा करें। वैसा अभी हो नहीं रहा है।

विभिन्न राज्यों में 'सरपंच-पति' प्रथा चल रही है, यानी सरपंच या प्रधान (विभिन्न राज्यों में पंचायत के प्रमुखों के विभिन्न पदनाम हैं) तो पत्नी हैं, मगर पंचायत का कार्य पति चलाते हैं। कहीं-कहीं पुत्र, देवर या श्वसुर भी यह कर रहे हैं। कुछ स्थानों में तो बैठकों में भी भाग लेते हैं, मगर अधिकांश स्थानों में बैठकों में औपचारिक रूप से तो नहीं रहते, मगर करते सब कुछ वही हैं।

मध्य प्रदेश में हुए हाल के एक अध्ययन में पाया गया कि ग्राम सभाओं में उपस्थिति बहुत कम रहती है—गणपूर्ति भी नहीं हो पाती। वहां के मंडला जिले की अंजानिया पंचायत में मई 1995 से जनवरी 1997 के बीच ग्राम सभा की आठ बैठकें हुईं। गणपूर्ति के लिए दो सौ बहत्तर व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक थी। परंतु वहां अधिकतम उपस्थिति नब्बे और न्यूनतम बाइस रही। होशंगाबाद के व्यावरा ग्राम पंचायत में पिछले तीन वर्षों में नौ बैठकें हुईं, निटाया ग्राम पंचायत में ग्यारह—मगर किसी में गणपूर्ति नहीं थी। ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला पंचायतों में भी पूरी उपस्थिति नहीं रहती, यद्यपि उनमें अधिकांश बैठकों में गणपूर्ति रहती है। मध्य प्रदेश के पंचायत अधिनियम में एक संशोधन किया गया है कि ग्राम सभा की गणपूर्ति के लिए आवश्यक उपस्थिति में कम-से-कम एक-तिहाई उपस्थिति महिलाओं की रहे। तभी बैठक वैध होगी। यह एक अच्छा कदम है और ऐसा प्रावधान सभी राज्यों के अधिनियमों में होना चाहिए।

साथ ही, महिलाओं और अनुसूचित जाति तथा जनजातियों में से कम-से-कम एक सदस्य को, पंचायतों की सभी समितियों में भी रखना चाहिए। राज्य अधिनियमों में स्थायी और अन्य समितियों के गठन का प्रावधान है। चूंकि समितियां छोटी होती हैं, इसलिए उनमें सबको भाग लेने का अवसर मिल सकता है। इससे महिलाओं की हिचक हटेगी; वे विभिन्न समस्याओं को ठीक से समझ सकेंगी और उन्हें ग्राम सभा तथा पंचायत की बैठकों में भाग लेने में आसानी होगी। केरल अधिनियम की धारा 162(4) में पंचायत की प्रत्येक स्थायी समिति में अनुसूचित जाति/जनजाति में से एक व्यक्ति और कम-से-कम एक महिला का होना अनिवार्य है। ऐसा प्रावधान अन्य राज्यों के अधिनियमों में भी किया जाना चाहिए।

मगर कानून बना देने मात्र से काम नहीं चलेगा। एक बहुत प्रमुख पक्ष है—प्रशिक्षण का। पंचायत के सभी सदस्यों का प्रशिक्षण आवश्यक है, परंतु उनमें जो नए आए हैं, उनका प्रतिशत बहुत आवश्यक है और जो शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में पीछे रहे हैं, जैसे—अनुसूचित जाति/जनजाति और महिलाएं—उनका प्रशिक्षण तो तात्कालिक अनिवार्यता है।

मूल प्रश्न है कि पंचायतें कर क्या रही हैं? क्या वे आम लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप काम कर रही हैं? क्या पंचायतों के आने के बाद विकास की गति में तेजी आई है? बच्चे स्कूल जा रहे हैं? स्वास्थ्य-सेवा में सुधार हुआ है? सिंचाई बढ़ी है? जल वितरण प्रणाली ठीक हुई है? गांव साफ-सुथरे और स्वच्छ बन रहे हैं? आपसी तनाव कम हो रहा है? झगड़े-झंझट गांव में निपटाए जा रहे हैं?

पंचायतों के ये प्रारंभिक वर्ष हैं और उनके कार्यों के मूल्यांकन का अभी समय नहीं आया है। समय है यह देखने का कि दिशा ठीक है या नहीं? पंचायतें जनोन्मुखी तो हैं? लोगों का विश्वास बढ़ रहा है या नहीं?

देश के व्यापक धुंधले वातावरण का प्रभाव पंचायतों पर भी पड़ा है। यह स्वाभाविक है। पंचायतें अभी सामान्यत: टीके देने और विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत लाभार्थियों की सूची में नाम लिखवाने में जुड़ी हैं। मध्य-स्तरीय और जिला पंचायतें, सामानों की खरीदारी और शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति और स्थानांतरण में व्यस्त हैं।

यह एक विकृति है। पंचायतों को तो ग्रामीण जीवन को नया कलेवर देना है—समृद्धि और समता के द्वारा, सहमति और सहयोग के आधार पर शोषण-रहित समाज बनाकर। इसके लिए उन्हें अपने कार्य क्षेत्र को विस्तृत करना पड़ेगा, जैसा कि राज्य-अधिनियममें में प्रावधान है। अंतर्पंचायती मनोमालिन्य को मिटाना होगा और ग्राम सभा को जीवंत बनाकर लोकहित के व्यापक परिप्रेक्ष्य में सारे कार्य करने होंगे। प्रशिक्षण से दिशा-निर्धारण में मदद मिलेगी।

संसद ने अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए, संविधान के 73वें संशोधन को कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन के साथ उन क्षेत्रों में लागू करने के लिए दिसंबर 1996 में एक अधिनियम बनाया। इससे ग्राम सभा सभी कार्यों के केंद्र में आ गई है। वह सभी निर्णयों, कार्यों का स्रोत बन गई है। इससे गरीब, उपेक्षित, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों तथा महिलाओं के विकास के लिए मार्ग और अधिक प्रशस्त हुआ है।

अब आवश्यक यह है कि लोग जुट जाएं। समाज-सेवी संस्थाएं और व्यक्ति आगे आएं। गहन प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था हो—सरकार के स्तर से और समाज के सभी प्रबुद्ध वर्गों, संस्थाओं और व्यक्तियों के द्वारा। कानूनी प्रावधानों का व्यापक प्रचार हो; लोगों को उत्साहित और संगठित किया जाए; शिक्षा फैले; दबे-कुचले लोगों तथा महिलाओं को आगे लाया जाए।

देश एक मोड़ पर है और बदलाव के लिए बेचैन है। समय सर्वथा उपयुक्त है। आवश्यक है अंध-विश्वासों,सामंती प्रवृत्तियों,निहित स्वार्थों के अंधकार से संघर्ष की। इसमें सबसे प्रमुख होगी महिलाओं की अपनी भूमिका—अपने को संगठित करने में, शिक्षा के प्रचार में, ग्राम सभा और पंचायतों को जागृत और सशक्त बनाने में, भ्रष्टाचार और शोषण को रोकने तथा विकास की प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन कर उसे गतिशील बनाने में। पिछले कुछ वर्ष संरचना में लगे, आगे के वर्ष निर्माण के हों—पंचायतों की यह सुनिश्चित और अनिवार्य दिशा होनी चाहिए और इसमें महिलाओं की सक्रिय भूमिका एक सामयिक और ऐतिहासिक आवश्यकता है। ❑

सफलता की कहानी

पान बिहार गांव का सर्वांगीण विकास

हरिशंकर शर्मा

लगभग पांच हजार की आबादी वाले उज्जैन जिले के गांव पान बिहार में मध्य प्रदेश में पंचायती राज की स्थापना के साथ ही नई पंचायत गठित हुई। कुल 18 पंचों में छह महिलाएं चुनी गईं। अनुसूचित जाति वर्ग के श्री गणेश चौहान सरपंच चुने गए।

विगत तीन वर्षों की अवधि में पंचायत ने लगभग 7,51,000 रुपये के निर्माण-कार्य करवाए हैं। सरपंच के अनुसार गांव के विकास में ग्राम सभा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सर्वप्रथम ग्राम सभा में यह प्रस्ताव रखा गया है कि गांव के बस स्टैण्ड पर पांच दुकानों का निर्माण किया जाए क्योंकि गांव में डाक्टर और मेडिकल स्टोर का अभाव था। जन सुविधा को देखते हुए 92,000 की लागत से पांच दुकानें बनवाई गईं। इनमें से एक दुकान डाक्टर को, दूसरी मेडिकल स्टोर को और तीसरी किरयाना व्यवसायी को आबंटित की गई।

ग्राम पंचायत ने दूसरी प्राथमिकता पर गांव के खड़ंजा को और बलाईखेडा से पान बिहार के पहुंच मार्ग को रखा। योजना मंडल से प्राप्त 1,12,000 रुपये की लागत से बलाईखेडा के साथ तीन कि.मी. लंबे मार्ग का अर्थवर्क करवाया। यह राशि विधायक कोटे से प्राप्त करने के लिए सरपंच ने पहल की। इसी के साथ गांव में 1,39,000 रुपये की लागत से खड़ंजा लगवाया गया। इस कार्य से कीचड़ की समस्या से मुक्ति पाई गई। अब बारी आई पेयजल की। इसके लिए सांसद कोटे से 3,25,000 रुपये मंजूर करवाए गए। अब तक एक बोर खुद गया है और पाईप आदि भी पहुंच गए हैं। शीघ्र ही टंकी का भी निर्माण हो जाएगा।

अन्य कार्यों के बारे में 51,000 की लागत से 300 मीटर नाली बनवाई गई और 15,000 रुपये लगाकर मोहल्ले में पेयजल के लिए पाईप लाइन डलवाई गई है। इसी तरह गांव में अब तक 12 इंदिरा आवास, आई.आर.डी.पी. के 30 प्रकरण, 27 राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन तथा चार आंगनबाड़ियों को संचालित किया जा रहा है।

यह इस पंचायत के पंचों-सरपंच और ग्राम सभा की सक्रियता और जागरूकता का ही परिणाम है कि पान बिहार पंचायत को वर्ष 1996 में जिले की सर्वश्रेष्ठ पंचायत का पुरस्कार दिया गया। 25,000 रुपये की पुरस्कार राशि से यहां ट्यूबलाइट लगवा दी गई है। ❑

पंचायती राज व्यवस्था : विकास के तरीके में बदलाव की जरूरत

प्रो. एम. असलम

न्याय और समानता पर आधारित सामाजिक और आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी जरूरी है। हालांकि हमारी अनेक उपलब्धियां गर्व करने योग्य हैं लेकिन अभी भी देश की आबादी के अधिकांश हिस्से की, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वालों की, विकास प्रक्रिया में कोई भागीदारी प्राप्त नहीं है। इस असंतुलन का प्रमुख कारण जमीनी स्तर के लोकतांत्रिक संस्थानों की विकास की दिशा तय करने में कोई भूमिका का न होना है।

संविधान में संशोधन करके पंचायती राज व्यवस्था को फिर से कायम करके इस असंतुलन को दूर करने का प्रयास किया गया है। साथ ही संविधान में निहित भावना के अनुसार जमीनी स्तर की संस्थानों की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश की गई है। करीब पांच वर्ष पहले 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 लागू हुआ था। अब पांच वर्ष बाद नयी पंचायती राज व्यवस्था की सहायता से लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों पर विचार करने का सही समय है।

73वां संविधान संशोधन और राज्यों के कानून

73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल 1993 को लागू हुआ। यह एक ऐतिहासिक अधिनियम है, इसमें कोई दो राय नहीं है। यह जरूरी भी था लेकिन जब तक इसमें निहित भावना को अमल में नहीं लाया जाता, तब तक इसे मात्र पारित कर देना पर्याप्त नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि इस ऐतिहासिक अधिनियम के पीछे मूल भावना क्या रही? क्या इसका उद्देश्य पंचायतों को प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार देना मात्र है या उन्हें स्व-शासन की प्रक्रिया में सचमुच का भागीदार बनाना है? उन्हें मात्र प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार देने का मतलब तो यह होगा कि उनकी भूमिका केवल केन्द्र या राज्य सरकार की योजनाओं को लागू करने तक सीमित होगी जबकि स्व-शासन की प्रक्रिया में उन्हें सचमुच का भागीदार बनाने का अर्थ होगा, गांधी जी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करना। अगर हम इस दृष्टि से देखें तो 73वें संविधान संशोधन में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। यह काम राज्य विधान मंडलों पर छोड़ दिया गया है। 73वें संविधान संशोधन को संविधान के अनुच्छेद 243(जी) की भावना के अनुरूप नहीं बनाया गया है। राज्य सरकारों ने इस अनुच्छेद की व्याख्या अपने हितों के अनुरूप की है और पंचायतों को पूरे अधिकार नहीं दिए हैं। स्व-शासन के संस्थानों की धारणा की व्याख्या की जानी चाहिए थी, लेकिन कानूनी शब्दावली में यह बात डूब-सी गई है। इसी तरह एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के ऐसे अनेक कानून हैं, जो 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप नहीं हैं। जब तक इन कानूनों में उपयुक्त संशोधन करके इन्हें संविधान के अनुरूप नहीं बनाया जाता, पंचायती राज संस्थाओं के लिए स्व-शासन की प्रभावी संस्था के रूप में कार्य करना संभव नहीं होगा।

राज्य विधान मंडलों ने 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत जो कानून बनाए हैं, उनमें कई कमियां हैं। लगता है कि संविधान संशोधन पारित किए जाने और राज्य सरकारों द्वारा कानून बनाए जाने के बीच के समय में इस पर पर्याप्त विचार-विमर्श नहीं किया गया। कुछ ठोस सोच-विचार किए बिना, केवल निर्धारित समय-सीमा समाप्त होने से पहले कानून बना देने भर की रस्म अदायगी पूरी की गई। कुछ राज्यों में पहले से मौजूद कानूनों में कुछ फेर-बदल किया गया और उन्हें 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप दिखाने का प्रयास किया गया। राज्य कानूनों में एक बड़ी कमी पंचायतों के कार्यों और दायित्वों के बारे में है। अनेक राज्यों ने अपने कानूनों में ग्यारहवीं अनुसूची को ज्यों का त्यों रख दिया। केवल थोड़े-से राज्यों ने इस अनुसूची में वर्णित विषयों में से कुछेक को अलग से पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में रखा। राज्यों को 11वीं अनुसूची और अनुच्छेद 243 (जी) पर एक-साथ विचार करना चाहिए था, तभी पंचायतों के तीन स्तरों के कार्यों और दायित्वों का निर्धारण करना चाहिए था। लेकिन

इस चुनौती का मुकाबला दूरस्थ शिक्षण प्रणाली की सहायता से किया जा सकता है। इस शिक्षण प्रणाली की आजकल देश में जड़ें जम रही हैं और यह ज्यादा महंगी भी नहीं है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने भारत सरकार के ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय की सहायता से पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है।

राज्य सरकारों ने इस आधारभूत सिद्धांत की उपेक्षा की कि जो कार्य जिस स्तर पर प्रभावी ढंग से किया जा सकता है, वह उसी स्तर पर ही किया जाना चाहिए, उससे ऊंचे स्तर पर नहीं। परिणाम यह हुआ है कि राज्य सरकारों के प्रशासनिक और वित्तीय अधिकारों का विकेन्द्रीकरण नहीं हुआ है। इसके विपरीत राज्य सरकारों ने कानून बनाकर यह अधिकार हासिल कर लिया है कि यदि किसी पदाधिकारी का कार्य राज्य सरकार द्वारा संतोषजनक नहीं समझा जाता, तो उसे हटाया जा सकता है। इस तरह राज्यों के कानूनों से विकेन्द्रीकरण का प्रयास नहीं किया गया है। इसीलिए ज्यादातर पंचायतें राज्य सरकारों की परियोजनाओं को लागू करने वाली संस्थाएं मात्र हैं। यह संविधान के अनुच्छेद 243(जी) में निहित भावना के अनुरूप नहीं है। इसलिए सातवीं अनुसूची पर फिर से विचार किया जाना चाहिए और केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों के दायित्वों का अलग-अलग विवेचन किया जाना चाहिए।

वित्तीय अधिकार

ज्यादातर राज्यों ने पंचायतों को वित्तीय रूप से सक्षम बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया है। यदि पंचायतों के पास अपने कार्यों को करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, तो स्वायत्तता का कोई अर्थ नहीं है। केवल दायित्वों की सूची बना देने लेकिन उसके लिए पर्याप्त धन तथा तकनीक उपलब्ध न कराने से कोई फायदा नहीं होगा। ज्यादातर पंचायतें धन के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर हैं। पंचायतों को संवैधानिक तौर पर आर्थिक और सामाजिक न्याय की परियोजनाएं बनाने और लागू करने के लिए चुना जाता है, इसलिए उनका आर्थिक रूप से सक्षम होना महत्वपूर्ण है। यदि उन्हें राज्य के राजस्व में से हिस्सा नहीं दिया जाता और स्थानीय रूप से कर लगाकर धन वसूलने का अधिकार नहीं दिया जाता, तो संविधान की भावना के अनुरूप उनका निर्वाचन कोरी कल्पना मात्र ही रह जाएगा। वर्तमान स्थिति उन्हें आश्रित बनाने का प्रयास है। राज्य वित्त आयोगों की रिपोर्टें सौंपे जाने और उन पर अमल किए जाने में देरी से स्थिति और बिगड़ रही है। यह भी देखना है कि विभिन्न राज्यों के वित्त आयोगों ने स्थिति से निपटने के लिए अपनी-अपनी रिपोर्टों में क्या सिफारिशें की हैं।

केवल पंचायती राज संस्थानों का होना काफी नहीं है, उनमें भाग लेना भी जरूरी है। संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन में कहा गया है कि लोगों की भागीदारी और फैसले लेने में भूमिका उनके स्वभाव पर निर्भर करती है, न कि उस संस्था के ढांचे पर जिसमें वे भाग लेते हैं।

आरक्षण और पंचायतें

अनुच्छेद 243(डी) में हर पंचायत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। ये सीटें चुनाव द्वारा सीधी भरी जाती हैं। इनमें कम-से-कम एक-तिहाई सीटों पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाएं निर्वाचित होनी आवश्यक हैं। इसके अलावा कुल सीटों में से एक-तिहाई सीटों पर महिलाएं निर्वाचित होनी चाहिए। इसके साथ ही पंचायतों और अन्य पंचायती राज संस्थाओं के अध्यक्ष पद भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए आरक्षित होंगे। इस आरक्षण का फैसला राज्य विधान मंडलों पर छोड़ दिया गया है। इस आरक्षण के फलस्वरूप देश भर में पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर करीब आठ लाख महिलाएं चुनी गई हैं।

यह सत्य है कि केवल आरक्षण से ही उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो जाती फिर भी सामाजिक बदलाव की दिशा में यह एक ठोस कदम है जिसमें विचारों और हितों का टकराव भी होता है। पिछले कुछ वर्षों में इस आरक्षण के प्रभाव पर नजर डालने पर हम देखते हैं कि आम लोगों ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के आरक्षण के साथ समझौता कर लिया है, लेकिन ऊंचे वर्ग/जाति के लोग अभी इसके साथ समझौता नहीं कर सके हैं क्योंकि ये लोग शुरू से सत्ता और राजनीति से जुड़े रहे हैं।

मध्य प्रदेश में पूरा दृश्य बड़ी अलग तरह का है। एक तरफ तो यहां पंचायती राज में महिलाओं की सत्ता में भागीदारी शुरू हो गई, दूसरी तरफ यहां 'सरपंच पति' और 'अध्यक्ष पति' जैसी संस्थाएं खड़ी हो गई हैं। ज्यादातर निरक्षरता, अशिक्षा और प्रशिक्षण का अभाव एक बड़ी बाधा बनता है। इसके अलावा सामाजिक दबाव भी स्व-शासन के काम में उनकी प्रभावी भागीदारी में बाधा डालता है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को ऊंची जाति की महिलाओं की अपेक्षा पंच के रूप में काम करने में ज्यादा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें दूसरों को अपनी मौजूदगी का अहसास दिलाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है। लेकिन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिये महिलाओं को धीरे-धीरे अपने सामाजिक पर्दे से बाहर लाया जा रहा है। कुछ समय बाद ये महिलाएं राजनीतिक परिपक्वता प्राप्त कर लेंगी।

एक अध्ययन से पता चला है कि हरियाणा में महिलाओं का पंचायतों में आरक्षण से एक स्पष्ट क्रांति आने लगी है। इसके अनुसार पंच के रूप में निर्वाचित ज्यादातर महिलाएं अनपढ़ थीं। दो साल बाद वे अपनी बेटियों को शिक्षा देने के लिए मांग करने लगी हैं। कर्नाटक में युवा महिलाएं पंचायती राज संस्थाओं में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी हैं। ग्राम पंचायतों से जिला पंचायत तक नजर डालने पर पता चलता है कि महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है।

73वें संविधान संशोधन के बाद स्थिति में इसी तरह के कई उतार-चढ़ाव दिखाई देते हैं। यह भी सच है कि पंचायती राज व्यवस्थाओं में महिलाओं का प्रवेश नया-नया है। वे अनपढ़ हैं, उन्हें अपनी भूमिका का कोई ज्ञान नहीं और प्रभावी भूमिका निबाहने में उनके सामने कई सामाजिक कठिनाइयां हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण से तथा महिलाओं के लिए नेतृत्व के विशेष प्रशिक्षण से इस समस्या को सुलझाया जा सकता है।

पदाधिकारियों को प्रशिक्षण : एक नई चुनौती

पंचायती राज व्यवस्था के पदाधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए देश में कई राष्ट्रीय और उप-राष्ट्रीय संस्थाएं हैं। इसके अलावा अनेक गैर-सरकारी संगठन भी यह काम कर रहे हैं। इनमें से कई संगठनों

को प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने का जिम्मा सौंपा गया था ताकि प्रशिक्षकों का एक कैडर तैयार किया जा सके। कुछ अन्य संगठन पंचायत और विकास पदाधिकारियों को प्रशिक्षण देने लगे हैं। लेकिन इन सबके बावजूद पंचायतों के ज्यादातर निर्वाचित प्रतिनिधियों को अभी तक कोई प्रशिक्षण नहीं मिला है। इसके अलावा प्रशिक्षण कितना प्रभावी है, इस पर भी प्रश्न चिन्ह लग रहा है। इसके कई कारण हैं, जो इस प्रकार हैं:

- केन्द्र और राज्य स्तर पर प्रशिक्षण की कोई स्पष्ट नीति नहीं है। इस कारण मानव संसाधनों के विकास के लिए स्पष्ट दिशा और समन्वय का अभाव है जबकि पंचायती राज व्यवस्था को कारगर और गतिशील बनाने के लिए मानव संसाधनों का विकास अत्यंत आवश्यक है।
- प्रशिक्षण संस्थानों में स्टाफ की बहुत कमी है और किसी प्रशिक्षण संस्थान में स्थानांतरण सजा माना जाता है। इस कारण जो लोग प्रशिक्षण संस्थानों में तैनात हैं, उनमें प्रेरणा-शक्ति और उत्साह का अभाव है। प्रशिक्षण संस्थानों में बहुत कम लोगों को प्रशिक्षण देने की क्षमता है जबकि उन्हें पंचायती राज संस्थानों के हजारों पदाधिकारियों को कम-से-कम समय में प्रशिक्षण देने के लिए कहा जा रहा है। इससे समस्या और ज्यादा जटिल हो गई है।
- प्रशिक्षण आवश्यकताओं का वैज्ञानिक ढंग से आकलन करके प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार नहीं किए गए हैं अपितु ये कार्यक्रम प्रशिक्षण प्रदान करने वाले स्टाफ ने अपनी समझ से तैयार किए हैं। इससे प्रशिक्षण बहुत प्रभावी सिद्ध नहीं हो रहा है। फिर प्रशिक्षण को लगातार चलने वाली प्रक्रिया न मानकर एक बार के प्रशिक्षण को पर्याप्त माना जा रहा है।
- प्रशिक्षण पर आने वाले अधिक व्यय को देखते हुए पंचायती राज संस्थाओं को प्रशिक्षण के लिए अपने सदस्य भेजना मुश्किल हो रहा है।
- प्रशिक्षण संस्थान, प्रशिक्षण के बाद उसके असर का आकलन नहीं करते।

इन कारणों को देखते हुए हमें इन समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करना चाहिए और लाखों लोगों को प्रशिक्षण प्रदान करने की चुनौती को स्वीकारते हुए प्रशिक्षण के कुछ नये उपायों के बारे में सोचना चाहिए।

दूरस्थ प्रशिक्षण योजना : एक पूरक प्रशिक्षण उपाय

इस चुनौती का मुकाबला दूरस्थ शिक्षण प्रणाली की सहायता से किया जा सकता है। इस शिक्षण प्रणाली की आजकल देश में जड़ें जम रही हैं और यह ज्यादा महंगी भी नहीं है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने भारत सरकार के ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय की सहायता से पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य निर्वाचित सदस्यों को उनकी भूमिका के प्रति जागरूक करना है ताकि वे समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में अपना योगदान दे सकें।

इस परियोजना के तहत स्वयं सीखने के लिए मुद्रित सामग्री और श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम तैयार किए गए। मुद्रित सामग्री में व्यापक विषयों को शामिल किया गया। इसमें भारतीय संविधान से लेकर सामाजिक न्याय के साथ विकास के बारे में जानकारी शामिल है। यह सामग्री छोटी-छोटी 23 पुस्तिकाओं में उपलब्ध है जिससे नव-साक्षर भी लाभ उठा सकते हैं।

इसी सामग्री को आसानी से समझने में सहायता करने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी में 6 वीडियो कैसेट और 12 श्रव्य कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। मुद्रित सामग्री प्रत्येक निर्वाचित सदस्य को उसके घर पर भेज दी जाती है और श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम हाट मेलों, स्थानीय दूरदर्शन केन्द्रों तथा आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित किए जा रहे हैं। मुद्रित सामग्री और श्रव्य-दृश्य कार्यक्रमों के बाद सदस्यों के साथ संपर्क कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। ये कार्यक्रम ग्राम पंचायत स्तर पर आयोजित किए जा रहे हैं। मध्य प्रदेश में यह कार्यक्रम गुना, धार, बस्तर और रायगढ़ के चार जिलों में अगस्त 1997 में शुरू किया गया और करीब 58,000 निर्वाचित पंचायत सदस्यों ने इसका लाभ उठाया।

मुद्रित सामग्री का अब सभी प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है। श्रव्य-दृश्य कैसेटों की भी क्षेत्रीय भाषाओं में डबिंग की जा रही है। जो सदस्य मुद्रित सामग्री का उपयोग नहीं कर सकते, उन्हें दूरदर्शन के विशेष कार्यक्रमों के जरिए इसकी जानकारी दी जा रही है। पंचायतों के सदस्यों के साथ कार्य कर रहे विकास कर्मचारियों के लिए दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के जरिए प्रमाण-पत्र कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। इसके अलावा राज्यों के प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से शिक्षा प्राप्त कर रहे लोगों के लिए अनुकूलन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन दोनों कार्यक्रमों से शिक्षार्थियों को काफी जानकारी मिल रही है और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के योजनाकारों को लाखों व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान करने में आसानी हो रही है।

विकास कार्यक्रमों में परिवर्तन की आवश्यकता

नयी पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण समाज के लिए जरूरी थी। इस व्यवस्था के शुरू होने से विकास के एक नये तरीके की शुरुआत हुई है। ग्रामीणों को इस नयी व्यवस्था में भाग लेना चाहिए क्योंकि समाज को प्रभावित करने वाले कार्यों में भाग लेने से सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं को उचित महत्व मिलता है। केवल पंचायती राज संस्थानों का होना काफी नहीं है, उनमें भाग लेना भी जरूरी है। संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन में कहा गया है कि लोगों की भागीदारी और फैसले लेने में भूमिका उनके स्वभाव पर निर्भर करती है, न कि उस संस्था के ढांचे पर, जिसमें वे भाग लेते हैं।

भारत में गरीबी और बेरोजगारी बहुत है। हालांकि देश में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्र इससे अछूते हैं। उपलब्ध संसाधनों पर कुछ थोड़े-से उच्च वर्ग का अधिकार है। कई पुराने रीति-रिवाज समाज में मौजूद हैं। जाति और भू-स्वामित्व पर आधारित संबंध तथा विभिन्न सांस्कृतिक रस्मो-रिवाज जो कभी-कभी सामाजिक बदलाव

(शेष पृष्ठ 49 पर)

पंचायत और उनका कैडर

डा. महीपाल

संविधान की धारा 243-जी ने पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्था का दर्जा प्रदान किया है। स्वायत्त शासन की संस्था का अर्थ है—पंचायतों को कार्यात्मक, वित्तीय तथा प्रशासनिक स्वायत्तता अर्थात पंचायतों के क्या-क्या कार्य हैं, इसका सही रूप से आबंटन, आबंटित कार्यकलापों के लिए पर्याप्त वित्त और कार्यकलापों के उचित रूप से संपादन के लिए पर्याप्त प्रशासनिक ढांचा। अप्रैल 1998 में 73वें संविधान संशोधन को पारित हुए पांच वर्ष हो रहे हैं। अप्रैल 1993 से अब तक पंचायतों के संदर्भ में उनके कार्यकलापों और वित्तीय साधनों पर अनेक चर्चाएं हुई हैं। कुछ राज्यों ने तो पंचायतों के तीनों स्तरों पर उनके क्या-क्या कार्य होने चाहिए, इसके लिए प्रशासनिक आदेश भी जारी किए हैं। वित्तीय साधनों के बारे में सभी राज्यों में राज्य वित्त आयोगों का गठन किया गया था, जिनकी अधिकतर राज्यों में रिपोर्ट भी आ चुकी है जिसमें इन आयोगों ने पंचायतों को राज्य से वित्तीय साधनों के हस्तांतरण के बारे में सिफारिश की है। लेकिन पंचायतों का अपना कैडर हो, इस पर कोई खास ध्यान नहीं दिया गया है जो कि पंचायतों को कार्यात्मक वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस लेख में पंचायतों के अपने कार्मिक हों, इसी पहलू पर प्रकाश डाला गया है।

पंचायतों को संविधान की धारा 243-जी के अनुसार 11वीं अनुसूची में वर्णित 29 विषयों, जिसमें कृषि विकास से लेकर परिसंपत्तियों के रख-रखाव तक शामिल हैं, के साथ-साथ आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इसलिए यदि पंचायतों को स्वशासी शासन की संस्था माना गया है, उन्हें आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने की जिम्मेदारी दी गई है, तो आवश्यक हो जाता है कि उनके अपने अधिकारी और कर्मचारी भी हों। तभी ये संस्थाएं प्रभावी रूप से अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकती हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो न तो पंचायतें स्वायत्त शासन की इकाई हो सकती हैं और न प्रभावी योजनाएं बना सकती हैं। इसीलिए पंचायती राज कैडर की आवश्यकता है।

यदि पंचायतों को स्वशासी शासन की संस्था माना गया है, उन्हें आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने की जिम्मेदारी दी गई है, तो आवश्यक हो जाता है कि उनके अपने अधिकारी और कर्मचारी भी हों। तभी ये संस्थाएं प्रभावी रूप से अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकती हैं।

वर्तमान स्थिति

विभिन्न राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशासन में सुधार और आर्थिक विकास में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना है, न कि स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करना है। पंजाब, बिहार, तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों में पंचायती राज अधिनियमों का उद्देश्य चाहे स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करना रहा है, परंतु अधिनियमों के प्रावधान ऐसा साबित नहीं करते। विभिन्न राज्यों में नौकरशाही को अत्यधिक अधिकार मिले हुए हैं। वे जब चाहे पंचायतों की उपेक्षा कर सकती है। कुछ नमूने पेश हैं।

हरियाणा पंचायती राज अधिनियम की धारा 47(1) के अनुसार, जिला विकास तथा पंचायत अधिकारी या डिविजनल अधिकारी, ग्राम पंचायत के प्रस्ताव को रद्द कर सकता है। आंध्र प्रदेश में आयुक्त तथा जिला कलैक्टर को पंचायतों के प्रस्तावों को रद्द करने, पंचायत अध्यक्षों को पद से हटाने और तदर्थ समितियों को बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ राज्यों में तो इससे भी अधिक अधिकार नौकरशाही को दिए गए हैं।

क्या इस प्रकार के प्रावधान गांधी जी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करते हैं? क्या ये डा. लोहिया के चौठ खंभाराज के सपने को साकार करते हैं? क्या जवाहरलाल नेहरू के इस कथन के अनुरूप हैं जब 1959 में कहा था कि 'हम नहीं चाहते कि कर्मचारियों का गांव के जीवन में दखल हो। हम 'स्वराज' गांव से स्थापित करना चाहते हैं।' प्रश्न उठता है कि पंचायती राज व्यवस्था कैसी होनी चाहिए।

पंचायत कैडर : कुछ उदाहरण

पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाने के लिए आवश्यक है कि उनके अपने अधिकारी और कर्मचारी हों। इसके लिए उनका अपना कैडर होना आवश्यक है। लेकिन प्रदेशों में पंचायतों के प्रशासनिक अधिकारी तथा अन्य स्टाफ, राज्य सरकार के द्वारा ही नियुक्त, स्थानांतरित और नियंत्रित किए जाते हैं। केवल गुजरात और राजस्थान में पंचायतों के अपने कैडर स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। गुजरात में पंचायत सर्विस निर्वाचित बोर्ड बनाने का प्रावधान है। इस बोर्ड में अन्य के अलावा जिला पंचायत का अध्यक्ष भी सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त जिला पंचायत सर्विस चयन समिति और जिला प्राथमिक स्कूल स्टाफ चयन समिति का प्रावधान भी अधिनियम में है। राजस्थान में भी जिला स्थापना समिति जिला पंचायत अध्यक्ष की अध्यक्षता में गठित करने का प्रावधान है। इस समिति का उद्देश्य ग्राम स्तर के कर्मचारी, पंचायत सचिव, प्राथमिक अध्यापक और प्रशासनिक स्टाफ चयन करना है। हरियाणा पंचायती राज अधिनियम की धारा 133(6), पंजाब पंचायती राज अधिनियम धारा 26, बिहार पंचायती राज अधिनियम 85(5), कर्नाटक पंचायती राज अधिनियम की धारा 196(5) में भी पंचायत कैडर गठित करने का प्रावधान है लेकिन इन राज्यों में यह स्पष्ट परिभाषित नहीं है। मध्य प्रदेश में भी

गुजरात और राजस्थान की तरह राज्य सरकार ने जनपद पंचायत की सिफारिश पर स्कूल के अध्यापकों की भर्ती का प्रावधान किया है।

इसके अतिरिक्त पंचायती राज अधिनियमों में राज्य सरकार से अधिकारियों तथा कर्मचारियों के पंचायतों में 'डेपुटेशन' पर जाने का प्रावधान तो है लेकिन ऐसा पंचायतों के बिना सलाह-मश्विरे के किया जाता है। यही नहीं, इन 'डेपुटेशनिस्टों' का कार्यकाल निर्धारण, स्थानांतरण और पदोन्नति भी राज्य सरकारों द्वारा ही की जाती है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंचायतों का विकास न होने का एक महत्वपूर्ण कारण पंचायतों के अपने कर्मियों का न होना है क्योंकि जब अधिकारी और कर्मचारी पंचायतों के नियंत्रण में नहीं हैं तो उनके कार्य का मूल्यांकन पंचायतों के अध्यक्षों के द्वारा न करके उच्च विभागीय अधिकारियों के द्वारा किया जाता है। इस स्थिति में पंचायतों के साथ कार्य कर रहे अधिकारी और कर्मचारी पंचायतों के अध्यक्षों के प्रति उत्तरदायी न होकर विभागीय अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उनकी मूल्यांकन रिपोर्ट भी पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा न लिखी जाकर विभागीय अधिकारियों द्वारा लिखी जाती है। इससे वे पंचायतों के अध्यक्षों के प्रति उतना सम्मान नहीं रखते, जितनी उनसे अपेक्षा की जाती है। इस तरह की स्थितियों में निर्वाचित प्रतिनिधियों और कार्मिकों में सौहार्द और सहयोग के वातावरण के बजाय तनाव का वातावरण रहता है जो पंचायती राज व्यवस्था के विकास के लिए नुकसानदायक है। इसलिए जब पंचायतों ने भारत की संघीय राजनैतिक पद्धति के तीसरे स्तर की सरकार का दर्जा ले लिया है, तो उसके लिए जैसे कि केंद्र सरकार और राज्य सरकार की अपनी व्यवस्थित सेवाएं हैं, उसी प्रकार पंचायतों की भी अपनी सेवाएं गठित की जानी चाहिए। इसके लिए संविधान के भाग चौदह, जिसमें केंद्र सेवाओं और राज्य सेवाओं का प्रावधान है, वहीं पर पंचायत सेवाओं का प्रावधान होना भी अनिवार्य है। अत: संविधान में संशोधन करके पंचायतों को वास्तव में तीसरे स्तर की सरकार बनाने के लिए उनके लिए पंचायत कैडर की स्थापना की जानी चाहिए।

अभी हाल में संपन्न हुए 12वें लोकसभा चुनावों के लिए सभी राजनैतिक दलों ने अपने घोषणा-पत्रों में पंचायतों को सशक्त करने का वायदा किया था। उदाहरण के लिए—कांग्रेस के घोषणा-पत्र में पंचायतों को मजबूत करने का वायदा किया गया। संयुक्त मोर्चा ने कहा कि विकेंद्रीकरण ही देश में लोकतंत्र की सुरक्षा की गारंटी दे सकता है। वामपंथी दलों ने सत्ता के विकेंद्रीकरण पर जोर दिया है ताकि योजनाएं बनाने में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित हो। समता पार्टी ने पंचायतों और शहरी निकायों को 73वें और 74वें संविधान संशोधन के तहत अधिकार, धन और कार्मिक उपलब्ध करा कर उन्हें मजबूत बनाने का संकल्प लिया। भारतीय जनता पार्टी ने संविधान के 73वें और 74वें संशोधन में उचित परिवर्तन करके पंचायतों को मजबूत बनाने और अधिक स्वायत्तता देने का वायदा किया।

सभी दलों ने पंचायतों के अधिकार बढ़ाने का वायदा किया है। यदि ये राजनैतिक दल स्थानीय शासन में लोगों की भागीदारी बढ़ाने के प्रति ईमानदार हैं, तो उन्हें संविधान के भाग चौदह में संशोधन करके पंचायत सेवा (कैडर) का प्रावधान करना होगा ताकि पंचायतें प्रशासनिक रूप से सशक्त होकर लोगों की आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। ❑

कुछ तो हमें सलाम करें

डा. देवेन्द्र सिंह

आओ चलें किताब पढ़ें।
कुछ यहां पढ़ें कुछ वहां पढ़ें,
नाम दुकानों के घर के सब
सड़कों का संकेत पढ़ें,
पढ़ें मकानों के नंबर को
गली-मुहल्ला, हाट पढ़ें,
आओ चलें किताब पढ़ें।

अंधे बनकर स्टेशन पर
अनपढ़ जैसे खड़े रहें,
कौन कहां तक आती-जाती
भला मुझे क्या पता रहे,
ऐसी कलम चलाऊंगा अब
जो मेरी पतवार बने,
आओ चलें किताब पढ़ें।

रुपया-पैसा जोड़ घटाना
दिन के सारे नाम पढ़ें,
लिख डालें हम दिल की बातें
खत से मन की बात पढ़ें,
बचा-खुचा कुछ समय
पकड़ कर
अपना आज हिसाब करें,
आओ चलें किताब पढ़ें।

तर्क करें, सच्चाई समझें
निर्भय होकर बात करें,
डाल बुराई को गड्ढे में
अच्छाई का साथ करें,
हाथ लगा है अपना जीवन
आओ इसे सम्हाल चलें,
आओ चलें किताब पढ़ें।

एक दिन ऐसा होगा जब
हम बूढ़े हो जाएंगे,
नाती-नातिन के संग बैठे
किसकी कथा सुनाएंगे,
इसीलिए पलटूंगा पन्ने
कुछ तो हमें सलाम करें,
आओ चलें किताब पढ़ें। ❑

मुंशी जी

डा. हरिकृष्ण देवसरे

हरिया के लड़के का मुंडन होने वाला था। हरिया ने इस शुभ कार्य पर अपने बहन-बहनोई को बुलाने के लिए सोचा कि अभी से चिट्ठी भेज दी जाए, ताकि दोनों उस रोज ज़रूर यहां आ जाएं। हरिया के बहन-बहनोई पास के गांव में रहते थे। चाहता तो खुद जाकर भी खबर दे सकता था। लेकिन उसने चिट्ठी भिजवाना ही ठीक समझा ताकि सनद रहे।

हरिया के गांव में एक मुंशी जी थे—हरद्वारी लाल। उस गांव में वही एक पढ़े-लिखे इन्सान थे। गांव के लोग अपना हिसाब-किताब और चिट्ठी लिखवाने का काम उन्हीं से कराते थे। हरिया भी एक पोस्टकार्ड लेकर उनके पास गया।

मुंशी हरद्वारी लाल उस वक्त घर के बाहर एक चारपाई पर बैठे गुड़गुड़ी पी रहे थे। हरिया ने आकर कहा—'मुंशी जी! मेरे लड़के का मुंडन होना है। सो बहन-बहनोई को बुलाना है। मेरी चिट्ठी उनके लिए लिख दो।'

'तेरे बहन-बहनोई कहां रहते हैं।' मुंशी जी ने पूछा।

'राघोगढ़ में।'

मुंशी जी गुड़गुड़ी पीते हुए कुछ सोचकर बोले—'भई आज मैं कोई चिट्ठी नहीं लिख सकता।'

'ऐसा न कहो मुंशी जी। मैं तो पैसे भी लाया हूं—चिट्ठी की लिखाई।' हरिया ने कहा।

'वो तो ठीक है। पर मैं चिट्ठी नहीं लिख सकता।'

'मुंशी जी! मैं तो अपना पोस्टकार्ड भी साथ लाया हूं। फिर भला चिट्ठी लिखने के लिए क्यों मना कर रहे हैं।'

'कह दिया न! मैं नहीं लिख सकता। जा किसी ओर से लिखा ले।'

'कोई और पढ़ा-लिखा इन्सान गांव में होता तो बात ही क्या थी? आपको चिट्ठी लिखाई कुछ ज्यादा लेनी हो तो वह ले लीजिए।'

'नहीं भाई।' मुंशी जी ने कहा, 'मुझे पैसों का कोई लालच नहीं है। पर मैं चिट्ठी नहीं लिख सकता।'

'मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता, मुंशी जी! आप चिट्ठी लिखने के लिए क्यों मना कर रहे हैं?' हरिया ने कहा।

'देख! बात ये है कि आजकल मैं गठिया रोग से परेशान हूं। मेरे पैरों में बहुत दर्द है। इसलिए मैं चिट्ठी नहीं लिख सकता।' मुंशी जी ने कहा।

'लो। ये भी कोई बात हुई। भला पैरों से थोड़े ही चिट्ठी लिखी जाती है। चिट्ठी तो हाथों से लिखनी है। अब आप चिट्ठी न लिखने का बहाना बना रहे हो, तो और बात है। पर ये बहाना चलेगा नहीं।' हरिया समझ गया कि जरूर कोई बात है, तभी तो मुंशी जी उल्टा-सीधा बहाना बना रहे हैं।

हरिया ने मन में तय कर लिया कि आज वह चिट्ठी लिखवाकर ही जाएगा।

मुंशी जी बोले—'अगर तुझे विश्वास नहीं है तो जा, बैद जी से पूछ आ। वह थोड़ी देर पहले ही मुझे दवाई देकर गए हैं।'

'मुंशी जी! मैं कब कह रहा हूं कि आपके पैरों में दर्द नहीं है। मैं तो बैठकर आपके पैर दबाने को भी तैयार हूं ताकि दर्द कम हो जाए।' और वह मुंशी जी के पास बैठकर उनके पैर दबाने लगा।

मुंशी जी बोले—'हरिया! तू बहुत भोला है। तू ही नहीं, इस गांव के और आस-पास के गांव के सब लोग बहुत भोले हैं। वो भी और तुम भी, ये सोचते हो कि सौ मर्ज़ की एक दवा मुंशी जी तो हैं ही। चिट्ठी लिखवानी हो तो मुंशी जी, हिसाब-किताब कराना हो तो मुंशी जी, मुकदमा लड़ना हो तो मुंशी जी... सब बातों के लिए मुंशी जी हैं। पर कभी ये तो सोचो कि अगर मुंशी जी न रहे तो तुम लोगों का क्या होगा?'

'शुभ-शुभ बोलो मुंशी जी! आपको चिट्ठी नहीं लिखनी है आज, तो न लिखो। पर ऐसी बुरी बात न करो।'

मुंशी जी बोले—'यही तो नहीं समझते हो तुम लोग। मैं कहता हूं कि तुम लोग पढ़ते-लिखते क्यों नहीं? अरे अपनी जरूरत भर का तो पढ़ लो।'

हरिया हंसकर बोला—'मुंशी जी! अब तुम तो रेत से तेल निकालने वाली बात कह रहे हो। हम ठहरे मूरख गंवार। हम भला क्या पढ़ेंगे? आज तक भला बंजर ज़मीन में कोई फसल उगी है?'

'मुहावरेदार बातें तो तू कर सकता है—और कहता है कि मैं बंजर भूमि हूं। अरे भाई कुंएं के ऊपर रखा पत्थर देखा है न! उससे रगड़ते हुए रस्सी घड़े को नीचे पानी तक ले जाती है और फिर वापस उसी रस्सी को पत्थर पर रगड़ते हुए घड़ा खींच लेते हो कि नहीं?'

'हां... सो तो है।' हरिया बोला।

'और कभी पत्थर को ध्यान से देखा है! उसमें रस्सी की रगड़ से जगह-जगह गड्ढे पड़ जाते हैं कि नहीं?'

'हां! वो भी देखे हैं। पर इस सबसे क्या होता है?'

'होता है... बिलकुल होता है। यही तो मैं कह रहा हूं। सुन—

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।

रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान॥

इसका मतलब ये है कि जैसे रस्सी के आने-जाने से, कुंएं पर, बार-बार पत्थर पर रगड़ने से—उस पत्थर पर निशान बन जाता है—गहरा गड्ढा हो जाता है—उसी तरह अगर मूर्ख आदमी बार-बार अभ्यास करे, बार-बार याद करे और पढ़ने की कोशिश करे—तो वह भी पढ़ा-लिखा, चतुर इन्सान बन सकता है। इसलिए यह मत सोचो कि तुम पढ़ नहीं सकते।'

'आपने तो मुझे अपनी बातों में बहका लिया मुंशी जी, पर मैं भूला नहीं हूं। मुझे आपसे आज चिट्ठी जरूर लिखवानी है।' हरिया बोला।

'यही तो अफसोस की बात है, हरिया कि इतनी सारी बात मैंने समझाई और तू कुछ भी न समझा।'

हरिया अब झुंझला पड़ा, 'कैसे समझूं मुंशी

जी। इतनी देर से आपको मना रहा हूं कि चिट्ठी लिख दो। अपना पोस्टकार्ड लाया, चिट्ठी लिखाई के दुगुने पैसे दे रहा हूं, पैर दबा रहा हूं—और आप हैं कि बहाने बनाकर मुझे बहका रहे हैं।'

'देख हरिया! मेरी बात को समझ। गांव में साक्षरता-अभियान शुरू हुआ है। पाठशाला कहो, चाहे साक्षरता केंद्र कहो। वहां तुम सब बड़े, बूढ़े, जवान, स्त्री हो या पुरुष—सब लोग जाओ और साक्षर बनो। मुझे इसकी फिक्र नहीं है कि तुम लोगों के पढ़-लिख जाने से, मेरी जो थोड़ी-बहुत आमदनी है, वो बंद हो जाएगी... मेरी तो एक ही इच्छा है कि तुम लोग साक्षर बन जाओ... कम-से-कम अपनी जरूरत भर का साक्षर बन जाओ।'

'हुंह! साक्षर बनने से ऐसा कौन-सा खज़ाना मिल जाने वाला है, मुंशी जी—जो आप इतनी बड़ी बात कह रह रहो।' हरिया चिढ़ कर बोला।

'मिलेगा... सचमुच बहुत बड़ा खजाना मिलेगा। साक्षर बनने से सिर्फ चिट्ठी लिखना, हिसाब-किताब करना ही नहीं आता—आदमी की समझ बढ़ती है। खेती-किसानी, बच्चों का पालन-पोषण, अपनी ज़िंदगी का तौर-तरीका, सफ़ाई, इलाज, घर-बार, काम-धंधा—सब बातों की समझ आती है। साक्षरता आने से आदमी के अंदर अपने बारे में भरोसा आता है। आदमी अपनी इज्ज़त करना सीखता है। ये जो तुम लोग अंधविश्वास, टोने-टोटकों, शकुन-अपशकुन पर विश्वास करते हो न, तब समझोगे कि ये सब बेकार की बातें हैं। ये जो दारू पीकर घरों को लोग बर्बाद करते हैं न, तब समझोगे कि नशे की लत कितनी बुरी होती है।' एक क्षण के लिए मुंशी जी रुके। गुड़गुड़ी फूंकी, पर उसकी आग बुझ गई थी। उसे एक तरफ रखकर बोले—'साक्षरता सिर्फ मर्दों के लिए जरूरी नहीं है—औरतों के लिए भी बहुत जरूरी है। गांव में जो साक्षरता केंद्र खुला है—वो औरतों के लिए भी है। इसलिए तुम लोग अपनी-अपनी घरवालियों को भी वहां पढ़ने को भेजो।'

यह सुनकर हरिया हंसने लगा। बोला—'मुंशी जी! भला औरतों ने कभी पढ़ा है, जो आज पढ़ने जाएंगी?'

'मैं जानता था कि तुम यही कहोगे—क्योंकि तुम लोग इतने तंग ख्यालों के हो कि औरत की कीमत को समझते ही नहीं। अरे भाई—एक औरत के साक्षर बनने का, एक लड़की के साक्षर बनने का मतलब है—एक परिवार का साक्षर बनना। अच्छा तू मुझे बता। तेरा घर कौन चलाता है, बच्चे कौन पालता है—पत्नी न? अब तू तो खेत पर या काम पर चला गया। बच्चा बीमार है—उसको डाक्टर ने निशान लगाकर दवा दी है कि ये पिलाने की है, ये तेल मालिश का है। पर पत्नी तो है—मूर्ख। उसने पिलाने की दवा के बजाय, मालिश का तेल बच्चे को पिला दिया—तो क्या होगा? बच्चे की हालत बिगड़ जाएगी और वो मरने को हो जाएगा। इसी तरह बहुत-सी बातें हैं—जिनके कारण औरतों का साक्षर होना जरूरी है—चाहे बच्चों का पालन-पोषण हो, घर की व्यवस्था हो, सफाई और काम-धंधा हो।'

'वो तो सब ठीक है, मुंशी जी। पर मेरी चिट्ठी का क्या होगा?' हरिया हताश होकर बोला।

'पहले ये बता कि तू मेरी बातें समझा कि नहीं?'

'बातें तो आपने ठीक कही हैं, मुंशी जी! आपकी बातों से मुझे भी भरोसा होने लगा है कि अगर कोशिश करूं तो मैं भी पढ़ सकता हूं।

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 50 रुपये का
दो वर्ष के लिए 95 रुपये का
तीन वर्ष के लिए 135 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....

पिन ....

इस कूपन को काटिए और इस पृष्ठ की पिछली ओर बने बाक्स के नं. 3 में दिए गए पते पर भेजिए।

और ये भी कि अगर घरवाली भी पढ़ जाएगी तो उससे फायदा ही होने वाला है।' हरिया ने कहा।

'तो अब ये बता कि तू गांव में जाकर सबको समझाएगा कि भाई साक्षरता केंद्र चलो—और हां, अपने घर की औरतों को भी साक्षर बनने के लिए वहां भेजो।'

'हां! मैं ये काम करूंगा। जरूर करूंगा। तब आपके पास एक मामूली चिट्ठी लिखवाने के लिए आकर बार-बार हाथ-पैर नहीं जोड़ने पड़ेंगे।' हरिया ने कहा।

'शाबाश! अब आया है, तू रास्ते पर।'

'पर अब तो चिट्ठी लिख दो, मुंशी जी।'

'न, चिट्ठी तो अब भी न लिखूंगा।' मुंशी जी फिर मुकर गए।

'क्यों? अब तो आपकी सारी बात मान ली।'

'देख हरिया! दरअसल बात ये है कि मेरे पैरों में बहुत दर्द है। इसलिए मैं चिट्ठी नहीं लिख सकता।' मुंशी जी ने कहा।

अब तो मानो हरिया के धैर्य का बांध टूट गया।

'बहुत हो गया मुंशी जी... मुझे आपसे ये उम्मीद न थी।' हरिया चिढ़ कर खड़ा हो गया।

'अरे मूरख, मेरी बात को समझने की कोशिश तो कर।' मुंशी जी ने कहा—'बात ये है कि मैं जिस चिट्ठी को लिखता हूं, उसे पढ़ने भी तो मुझे ही जाना पड़ता है। तेरे बहनोई का गांव राघोगढ़ हो या आस-पास का कोई और गांव। इन सारे गांवों में सब निरक्षर ही तो बसते हैं। मैं जब उन गांवों में जाता हूं, तो लोग अपनी-अपनी चिट्ठियां पढ़वाने आ जाते हैं। अब चूंकि मेरे पैरों में दर्द है, मैं वहां जाऊंगा नहीं—तो चिट्ठी लिखने से फायदा क्या? समझा! इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम लोग लिखना-पढ़ना सीखो—अपने बहनोई और बहन से कहो कि वो भी पढ़ना-लिखना सीखें—इस मामले में किसी का मोहताज होना ठीक नहीं।'

'आप ठीक कहते हैं, मुंशी जी। मैं ही गलती पर था। आज मैं संकल्प लेकर जा रहा हूं कि मैं जरूर साक्षर बनूंगा और अपनी घरवाली को भी साक्षर बनाऊंगा। अपने गांव के सब लोगों को कहूंगा कि साक्षर बनो—अपने ऊपर भरोसा करना सीखो। एक मामूली-सी चिट्ठी के लिए किसी से लिखवाने या उसको पढ़वाने के लिए किसी और का मुंह न ताको।'

'शाबाश! मैं तुम्हारी इस बात से बहुत खुश हूं। अगर गांव के सब लोग इस बात को समझ जाएं तो कितनी अच्छी बात होगी। लेकिन याद रखना—घरवाली को और गांव की औरतों को साक्षर बनाना न भूलना। अब तो तुम जानते हो कि पंचायतों में भी औरतों को आरक्षण दिया गया है। वे पंच ही नहीं, सरपंच भी बन सकती हैं। पंचायतों में अब सिर्फ पुरुषों की ही नहीं, महिलाओं की बात भी सुनी जाएगी—उन्हें अपनी समस्याओं, अपनी परेशानियों को हल कराने का पूरा हक दिया गया है। तो ये सब अच्छी तरह से तभी होगा—जब महिलाएं साक्षर बन जाएंगी। इसलिए महिलाओं को भी जरूर साक्षर बनाओ और औरतों के बारे में दकियानूसी ख्याल हैं, वो छोड़ दो।'

'मुंशी जी! सच पूछो तो आज भले ही आपने मेरी चिट्ठी नहीं लिखी—पर आपने मेरी, मेरी घरवाली की और ये भी कि पूरे गांव की किस्मत नये तरीके से लिख दी है—जो चिट्ठी से कहीं ज्यादा जरूरी और कीमती है।' कह कर हरिया ने आदर से मुंशी जी के पैर छुए और चला गया। मुंशी जी ने फिर से अपनी गुड़गुड़ी उठा ली थी। ❑

---

1. हम दिल्ली से *योजना* **अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में**
   कुरुक्षेत्र **हिन्दी और अंग्रेजी में**
   आजकल **हिन्दी और उर्दू में**
   और *बाल भारती* **हिन्दी में** प्रकाशित करते हैं।
2. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय होना चाहिए।
3. कूपन सहायक व्यापार व्यवस्थापक सर्कुलेशन, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066 के पते पर भेजिए।
4. सदस्य बनने के लिए आप हमारे निम्नलिखित केन्द्रों पर भी सम्पर्क कर सकते हैं :

   प्रकाशन विभाग : पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001; सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001; कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004; निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरा मंडल, बंगलौर-560034; सम्पादक, पेयोभरा, नौझम रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-1; सम्पादक, योजना (गुजराती), राम निवास, पालदी बस स्टाप के पास, सरखेज रोड, अहमदाबाद

   पत्र सूचना कार्यालय : सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.); 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302003
5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

महिला और पंचायत : पांच वर्ष का आकलन

मंजु पवार

73वां संविधान संशोधन 24 अप्रैल 1993 को लागू हुआ था। इसमें प्रावधान था कि पंचायतों के तीनों स्तरों अर्थात ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला पंचायत पर महिलाओं की एक-तिहाई भागीदारी, सदस्य और अध्यक्ष दोनों तरह के पदों पर होगी। इस प्रकार इस प्रावधान से पंचायतों के लगभग 34 लाख पदों में से लगभग 11 लाख पद महिलाओं के लिए सुनिश्चित हुए अत: यह प्रावधान महिलाओं की छिपी शक्ति को उजागर करने में सार्थक कदम रहा है। यही नहीं, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में एक-एक, मध्य प्रदेश में सात तथा महाराष्ट्र में तेरह ग्राम पंचायतों की प्रधान और सदस्य सभी महिलाएं हैं। इस लेख में महिलाओं द्वारा किए गए विभिन्न कार्यों का उल्लेख करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि भले ही अधिकतर महिलाएं अनपढ़ हैं, समाज की विभिन्न कुरीतियों की शिकार हैं, उस पर पुरुष वर्ग का आधिपत्य है, लेकिन इस सबके बावजूद उन्होंने अपनी बुद्धि और साहस से समाज के सामने जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, वे अनुकरणीय हैं।

दक्षिण हेरेल्ड में शकुंतला नरासिमन ने करनूल जनपद की कालबा ग्राम पंचायत की सरपंच 36 वर्षीय फातमा बी के कार्यों का जिक्र किया है, जो उल्लेखनीय हैं। इस पंचायत को सरकार की ओर से 'बैस्ट' पंचायत का इनाम मिला है। यह अशिक्षित महिला घर की चहार-दीवारी के अलावा कुछ नहीं जानती थी। लेकिन गांव की महिलाओं ने इसे चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित किया और सहयोग दिया। अंत में यही विजयी घोषित हुईं। शुरू-शुरू में फातिमा कुछ कहने से बहुत डरती थी। एक दिन जिले का कलक्टर उसे मिलने गांव आया। उसने कहा—''सरपंच से मिलना है।'' फातिमा के पति ने कहा कि ''मैं ही सरपंच हूं।'' कलक्टर ने कहा—''लेकिन यहां की सरपंच तो महिला है।'' तब फातिमा को बताया, ''आपसे साहिब मिलने आए हैं।'' समझो कि फातिमा के पैरों तले से जमीन खिसक गई। खैर! उसे हैदराबाद में चल रहे प्रशिक्षण शिविर के लिए राजी कर लिया। बस यही उसका टर्निंग प्वाइंट था। तीन दिन के प्रशिक्षण शिविर ने उसकी छिपी मुखरता को उजागर कर दिया। शिविर में ही फातिमा ने मंडल रिवैन्यु आफिसर जो शिविर में उपस्थित था, के बारे में कहा ''यही कर्मचारी है जिसने मेरे प्रोजेक्ट के लिए पैसा मंजूर नहीं किया और मेरे कुछ पेपर देने से इन्कार कर दिया।''

पिछले 18 महीनों में फातिमा ने पक्की रोड बनवाई, स्कूल शुरू करवाया, पानी की व्यवस्था की, गरीबों को जमीन के पट्टे दिलवाए और तालाब साफ कराया। सरपंच के इन प्रयासों से गांव की तसवीर और तकदीर ही बदल गई। अपने क्षेत्र से वह अकेली महिला है जिसने मंडल पंचायत की सबसे अधिक बैठकों में भाग लिया। यह नहीं कि उसे पुरुषों के विरोध का सामना न करना पड़ा हो। लेकिन महिलाओं की एकजुटता के आगे पुरुषों की एक न चली। पंचायत के पास एक तालाब था। गांव के एक पुरुष ने, जिसने फातिमा के चुनाव के लिए कार्य किया था, कहा कि ''इस तालाब की मछलियों को न्यूनतम राशि पर नीलाम कर दो।'' सरपंच ने मना कर दिया। इस प्रकार वह तालाब जो 10 या 20 हजार में नीलाम होता, एक लाख में नीलाम हुआ और उसका सारा पैसा ग्राम पंचायत कोष में जमा हुआ। इससे ग्राम पंचायत की अर्थ-व्यवस्था मजबूत हुई।

गांव के एक पुरुष ने, जिसने फातिमा के चुनाव के लिए कार्य किया था, कहा कि ''इस तालाब की मछलियों को न्यूनतम राशि पर नीलाम कर दो।'' सरपंच ने मना कर दिया। इस प्रकार वह तालाब जो 10 या 20 हजार में नीलाम होता, एक लाख में नीलाम हुआ और उसका सारा पैसा ग्राम पंचायत कोष में जमा हुआ। इससे ग्राम पंचायत की अर्थ-व्यवस्था मजबूत हुई।

हरियाणा के फरीदाबाद जनपद के होडल ब्लाक की बैधा पट्टी ग्राम पंचायत की महिला सरपंच ने गांव की पानी की समस्या के लिए पंचायत सचिव को निर्देश दिया कि वह एस.डी.ओ., स्वास्थ्य से मिल कर गांव की पानी की बिगड़ी स्थिति को व्यवस्थित कराए। सचिव ने ऐसा ही किया लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला। अंतत: सरपंच स्वयं एस.डी.ओ. के पास गई और उससे पानी की समस्या के समाधान के लिए अनुरोध किया। एस.डी.ओ. ने नौकरशाही अंदाज में कहा ''अभी टाइम नहीं है, मिलेगा तो कर दूंगा।'' सरपंच ने कहा ''आप कह रहे हो 'टाइम' नहीं है, वहां गांव में हम और हमारे पशु पानी के बिना परेशान हैं।'' अंत में महिला सरपंच ने कहा ''या तो आराम से चलो, नहीं तो गट्टा (कलाई) पकड़ कर घसीटती हुई गांव में ले जाऊंगी।'' सरपंच का इतना कहना था कि एस.डी.ओ. को पानी की व्यवस्था को सुधारने के लिए चलना पड़ा। इसी ब्लाक की खाम्भी ग्राम पंचायत की सरपंच ने ग्रामसभा की भूमि को उचित ठेके पर देकर ग्राम पंचायत की आय बढ़ाई। ग्रामसभा की जमीन जो 20,000 रुपये 5 वर्षों के लिए ठेके पर दी गई थी, उससे उसी जमीन को दो वर्ष के लिए 60,000 रुपये में ठेके पर उठाया। राज्य में नशाबंदी लागू होने से पहले ही महेंद्र गढ़ तथा रिवाड़ी जनपदों में अनेक महिला सरपंचों ने अपने कार्यक्षेत्रों में शराब के ठेके बंद करा दिए थे।

श्रीमती ओमबती ग्राम पंचायत बरला जट, जिला मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश की प्रधान हैं जो दलित समाज से हैं। ग्राम पंचायत में बोलबाला जाट का है तथा उप-प्रधान भी जाट है। उप-प्रधान और पंचायत के अन्य संपन्न परिवारों ने पहले तो प्रधान से कहा ''तुम तो अनपढ़ हो, तुम्हें क्या पता प्रधानी क्या होती है। इसलिए ग्रा

पंचायत के सभी कागजात हमारे यहां रख दो।" उसने कहा, "क्यों? सब कागजात मेरे पास ही रहेंगे।" गांव का संपन्न वर्ग ही नहीं, बल्कि पंचायत सचिव भी प्रधान का साथ न देकर उन लोगों का साथ दे रहा था जो महिला से प्रधानी हथियाने में लगे थे। जब यह दलित महिला किसी भी तरह उनके नियंत्रण में नहीं आई, तो उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए उप-प्रधान ने सभी दलित और अन्य पंचायत सदस्यों को खरीदने का प्रयास किया। अविश्वास प्रस्ताव लाने से पहले महिला सरपंच के परिवार पर हमला भी किया, जिससे सरपंच ने अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस का दरवाजा खटखटाया। कुल मिलाकर निर्भीक महिला प्रधान ने उप-प्रधान को, जो उस प्रधान पद से हटाना चाह रहा था, 24 दिन के लिए जेल की हवा खिलाई। इस प्रधान की प्राथमिकताएं गांव में उचित शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। इससे साफ पता चलता है कि भले ही महिला सरपंच अशिक्षित है लेकिन उसे विकास कार्यों का ज्ञान है।

जिला सहारनपुर के गंगोह क्षेत्र में 'एमपावरमेंट एंड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट इंनिशियेटिव' नामक स्वैच्छिक संस्था ने पंचायतों में चुनी महिलाओं के चार प्रशिक्षण शिविर लगाए थे, जिनमें महिलाओं ने खुलकर गांव के मुद्दे जैसे—स्वच्छता, पेयजल, प्राथमिक स्कूल, प्राथमिक चिकित्सालय और सिलाई सेंटर आदि उठाए। एक शिविर में क्षेत्र पंचायत की सदस्य ने उप जिला अधिकारी को बताया "मुझे क्षेत्र पंचायत की बैठक की सूचना नहीं दी जाती। जब हमको सूचना ही नहीं मिलती तो हम कैसे अपनी भूमिका निभा सकते हैं। अत: आप बी.डी.ओ. को निर्देश दो कि वे बैठकों की सूचना लगातार हमको दें।" इससे पता चलता है कि भले ही महिलाएं पहली बार चुन कर आई हैं लेकिन उनमें ग्रामीण विकास तथा ग्राम की प्राथमिकताओं के प्रति रूचि है। महिलाओं ने यह भी महसूस किया कि संगठित हुए बिना उन्हें अधिकार नहीं मिलेंगे।

'प्रिया' संस्था के एक अध्ययन के अनुसार श्रीमती शांति जो माधोपुर ग्राम पंचायत की प्रधान हैं, ने ग्राम पंचायत की भूमि को गांव के 'यूथ-क्लब' के चंगुल से छुटकारा दिलाया। प्रधान ने इस मुद्दे को ग्राम सभा की बैठक में रखा और ग्राम सभा की स्वीकृति लेकर यह कार्य शुरू किया। यह उनके नेतृत्व की प्रखरता के कारण ही संभव हो सका।

मध्य प्रदेश में महिलाओं के उल्लेखनीय कार्यों के अनेक उदाहरण हैं। श्रीमती लक्ष्मी उज्जाल लाह सुरिया ग्राम पंचायत की सरपंच हैं। शुरू में सरपंच ने अपने पति की छाया में कार्य करना शुरू किया। लेकिन उसे अपना दब्बूपन पसंद नहीं आया। अत: उसने स्वयं ब्लाक कार्यालय में जाकर अपनी पंचायत के विकास कार्यक्रमों की सूचना इकट्ठी करना आरंभ कर दी। जैसे-जैसे उसका संबंध बाहर की दुनिया से होता गया, वैसे-वैसे उसकी समझ पनपती गई। इसी समझ के कारण उसने ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न योजनाएं लागू कीं तथा लोगों की भागीदारी से गांव में मंदिर निर्माण कराकर तथा साक्षरता में अपनी अग्रिम भूमिका निभा कर अपनी 'लीडरशिप' की धाक जमा दी। ग्राम पंचायत के विभिन्न कार्यों को करने के लिए उसने मुख्यमंत्री तक को भी पत्र लिखे।

इसी प्रकार कर्नाटक में भी महिलाओं ने ठोस भूमिका निभाई है। यहां पर 73वें संविधान संशोधन से पहले भी महिलाओं का पंचायतों में आरक्षण था। यही कारण है कि पिछले चुनावों में यहां महिला पंचायत सदस्यों की संख्या संविधान द्वारा निर्धारित न्यूनतम 33 प्रतिशत से अधिक थी। यहां ग्राम पंचायत में महिलाओं की भागीदारी 36.5 प्रतिशत थी। यहां पंचायत के मूल्यांकन के अनेक अध्ययनों से पता चलता है कि पहले महिलाएं बैठकों में अपने पास बैठे व्यक्ति के माध्यम से अपनी समस्या अध्यक्ष तक पहुंचाती थीं। बाद में कुछ बैठकों के बाद वे अलग से अध्यक्ष से मिलकर अपनी समस्याओं के बारे में बात करने लगीं और फिर उनकी झिझक खुल गई। तब उन्होंने बैठकों में ही बोलना शुरू कर दिया। यही नहीं, महिलाओं को पुरुषों से अधिक ग्राम विकास की समझ है। मूल्यांकन बताते हैं पुरुषों ने अपनी प्राथमिकताएं सड़क निर्माण, पंचायत घर बनाना तथा पंचायत घरों में रेडियो और टी.वी. सेट होना आदि बताया जबकि महिलाओं ने अपनी प्राथमिकताएं बच्चों के स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र, धुआं रहित चूल्हा और आय सृजन की गतिविधियां बताईं।

पहले महिलाएं बैठकों में अपने पास बैठे व्यक्ति के माध्यम से अपनी समस्या अध्यक्ष तक पहुंचाती थीं। बाद में कुछ बैठकों के बाद वे अलग से अध्यक्ष से मिलकर अपनी समस्याओं के बारे में बात करने लगीं और फिर उनकी झिझक खुल गई। तब उन्होंने बैठकों में ही बोलना शुरू कर दिया।

केरल में श्रीमती सुहेरा 'पुथीक' पंचायत की अध्यक्ष हैं। सत्तारूढ़ मार्क्सवादी पार्टी ने सुहेरा को अध्यक्ष पद के लिए इसलिए प्रत्याशी बनाया था कि वह एक कामरेड की पत्नी है और पार्टी जैसे चाहेगी, वैसे ही वह महिला कार्य करती रहेगी। इसलिए पार्टी ने अपनी एक उप-समिति बनाई और फैसला किया कि इसके द्वारा मंजूर किए गए विकास कार्यक्रम ही पंचायत क्षेत्र में लागू होंगे। इस प्रकार निर्णय लेने की शक्ति पंचायत या ग्राम सभा में निहित न होकर पार्टी की इस उप-समिति में निहित हो गई। श्रीमती सुहेरा को यह मंजूर नहीं था क्योंकि वह चाहती थी कि पंचायत कार्य पार्टी के आदेशों के अनुसार न होकर ग्राम पंचायत के आदेशों के मुताबिक हो। वास्तव में पार्टी कुछ ठेकेदारों को विकास कार्यों का ठेका दिलाकर अनुग्रहीत करना चाहती थी। श्रीमती सुहेरा को यह मंजूर नहीं था। उनका तर्क था "मुझे यहां की जनता ने चुना है और मैं जनता का आदेश ही मानूंगी।" अंतत: उसने अपने त्यागपत्र का प्रस्ताव किया। सुहेरा के इसी साहस, निर्भीकता और लोकतांत्रिक तरीके से कार्य करने की इच्छा के कारण वह 'रोल मोडल' के रूप में उभर कर आई है।

पश्चिम बंगाल में महिलाओं की भागीदारी न्यूनतम निर्धारित 33 प्रतिशत से अधिक है। यहां ग्राम पंचायत में 35.4 प्रतिशत, पंचायत समिति में 33.7 प्रतिशत तथा जिला परिषद में 34.1 प्रतिशत महिला सदस्य हैं। इस राज्य में एक ऐसी पंचायत भी है जिसके सभी 13 सदस्य और प्रधान महिलाएं हैं। यह पंचायत कुट्ट करी गांव में है जो मिदनापुर जनपद के सकरोल ब्लाक में है। इस पंचायत ने अपनी आय बढ़ाने के लिए बड़े तालाबों को पट्टे पर बेचा है तथा पंचायत की सात एकड़ परती जमीन पर

(शेष पृष्ठ 52 पर)

नई पंचायती राज व्यवस्था : कहां तक कारगर

दिवाकर दुबे *

लगभग पांच वर्ष पहले पास किए गए संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम का देहातों में बहुत स्वागत किया गया था। ग्रामीणों को यह लगा कि जो पंचायती राज संस्थाएं मृतप्राय हो गई थीं, जिन्हें अधिकार और साधन-विहीन कर निष्क्रिय बना दिया गया था, और जिनके चुनाव दशकों तक न करा कर राज्य सरकारों ने उनके अंतिम संस्कार की योजना बना ली थी, वे संस्थाएं ग्राम विकास की सशक्त इकाई बन जाएंगी। जनता तक सत्ता पहुंचेगी, वे राज्य सरकारों की मर्जी पर नहीं रहेगी। उनके कार्यकर्ताओं को खंड और जिले स्तर पर कार्यरत अधिकारियों को हाथ-पैर नहीं जोड़ने पड़ेंगे।

उन्हें लगा कि पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिल चुका है अर्थात संविधान में उनकी वही स्थिति हो गई है जो केंद्र तथा राज्य सरकारों की है। वे हमारे फेडरल तंत्र में तीसरे स्तर की सरकारें बन चुकी हैं। लेकिन 73वां संविधान संशोधन जिन उद्देश्यों को लेकर किया गया, उनमें कहां तक सफलता मिली है इसका आकलन करना बहुत जरूरी हो गया है।

नई पंचायती राज व्यवस्था जिन उद्देश्यों को लेकर लागू की गई, उनको पूरा नहीं कर सकी। हमारे देश में लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है तथा आमतौर पर वह कृषि पर निर्भर है। इन खेतिहर ग्रामीणों के उत्थान के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर नई पंचायती राज व्यवस्था 1993 तक अनेक विकास योजनाएं सुनियोजित ढंग से लागू की गईं। इनमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम आदि प्रमुख हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन विकास कार्यक्रमों से देश खाद्यान्न में आत्म निर्भर हुआ है, कुछ हद तक लोगों को रोजगार मिला है तथा उनके जीवन-स्तर में सुधार हुआ है। परंतु आमतौर पर यह देखने में आया है कि ग्रामीण विकास के लिए चलाई गई बहुत-सी योजनाएं पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकीं।

नई व्यवस्था के अंतर्गत जो महिलाएं चुन कर आई हैं, उनमें से ज्यादातर महिलाएं अनपढ़ हैं। उनको अपने अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में कोई जानकारी नहीं है। उनको इसकी जानकारी के लिए प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। राज्य सरकारों ने अपने-अपने राज्यों में प्रशिक्षण संस्थान खोल रखे हैं लेकिन यह प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरी तरह नहीं चल पा रहा है। अभी भी ज्यादातर गांव की चुनी हुई महिलाओं को अपने कर्तव्यों और अधिकारों की जानकारी नहीं है। पंचायतों के सभी स्तर के चुनाव में महिला प्रतिनिधियों ने शिक्षा की कमी को भी महसूस किया है। अक्सर शिक्षित न होने की वजह से वे अपने आपको असहाय तथा कमजोर महसूस करती हैं।

नई पंचायती राज व्यवस्था के तहत सभी राज्यों में पंचायतों के चुनाव हो चुके हैं और पंचायत कानून पास कर दिए हैं। इस व्यवस्था में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली लागू करने की बात कही गई है। इस अधिनियम के अनुच्छेद (ख) के अनुसार 20 लाख जनसंख्या वाले राज्यों में अनिवार्यत: तथा उससे कम जनसंख्या वाले राज्यों में संवैधानिक रूप से तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का प्रावधान है। फिलहाल देश में 14 राज्यों तथा केंद्रशासित राज्यों में तीन स्तरीय, 4 राज्यों में द्विस्तरीय तथा 10 में एक स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था कार्यरत है। मेघालय, लक्षद्वीप, नगालैंड और मिजोरम में जो ग्राम पंचायतें काम कर रही हैं यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होता। उक्त व्यवस्था में पंचायतों को 29 विषय आबंटित किए गए हैं। ये हैं—कृषि, भूमि सुधार, लघु सिंचाई, पशुपालन, दुग्ध व्यवस्था, सामाजिक वानिकी, मत्स्य पालन, लघु वन उत्पाद, लघु उद्योग, खादी ग्रामोद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन और चारा, सड़कें, नहरें, नालियां, संचार, बिजली, गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत, गरीबी उन्मूलन, स्कूली शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक क्रियान्वयन, विपणन एवं मेले, चिकित्सा एवं सफाई, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, विकलांगों का कल्याण, कमजोर वर्ग को सहायता, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सामुदायिक आस्तियों का रख-रखाव हैं।

*प्रभारी कार्यकारी सचिव, अखिल भारतीय पंचायत परिषद, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली

उपरोक्त विषयों को पूर्ण रूप से कारगर बनाने तथा उनके क्रियान्वयन के लिए हर राज्य में एक वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया। यह वित्त आयोग पंचायती राज संस्थाओं को अनुदान के बारे में सिफारिशें करने के लिए गठित किया गया। लेकिन अभी भी उपरोक्त योजनाओं को चलाने के लिए ग्राम पंचायतों को धन उपलब्ध नहीं कराया गया। दसवें वित्त आयोग ने भी तदर्थ रूप से 4,800 करोड़ रुपये केंद्र की ओर से पंचायतों को देने की सिफारिश की थी।

इस नई व्यवस्था के बाद 1995 में पंचायत अध्यक्षों के दो बड़े सम्मेलन आयोजित किए गए जिसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधि राजधानी में आए। उसमें पास किए गए प्रस्तावों से प्रकट होता है कि संविधान का 73वां संशोधन देहातों तक सत्ता पहुंचाने तथा जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को प्रभावी बनाने में सफल नहीं रहा है। आज का लोकतंत्र लोक पर हावी है। जनता तक सत्ता पहुंचाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इस सम्मेलन में अध्यक्षों की शिकायत थी कि तमाम हल्ले-गुल्ले के बाद भी आज तक किसी भी राज्य में जरूरी अधिकारों और संसाधनों का हस्तांतरण उन्हें नहीं किया गया। स्वयं तत्कालीन ग्रामीण विकास एवं रोजगार मंत्री ने इनकी इन शिकायतों को जायज बताते हुए कहा कि कई राज्य सरकारों ने अभी तक पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय तथा अन्य अधिकार हस्तांतरित किए हैं और जब तक पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार नहीं मिलते हैं तब तक गांधी जी का ग्राम स्वराज का सपना अधूरा ही रहेगा।

श्री गुजराल ने पंचायती राज के माध्यम से ग्राम स्तर पर लोकतंत्र की शुरुआत को स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि बताया। उन्होंने कहा कि हमें निचले स्तर की संस्थाओं में भय की भावना को हटा कर उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा। उन्होंने कहा कि देश की आजादी का यह पचासवां वर्ष होने पर यदि कोई मुझसे पूछे कि इन पचास वर्षों की मुख्य उपलब्धि क्या है तो मैं पंचायती राज की पुनर्स्थापना को इन वर्षों की मुख्य उपलब्धि मानूंगा।

नई व्यवस्था के अंदर पंचायती राज संस्थाओं में दो-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर आरक्षित की गई हैं। करीब-करीब सभी राज्यों में पंचायतों के चुनाव हो चुके हैं। वहां का जायजा लेकर यह पता लगाया जा सकता है कि वहां महिलाओं की स्थिति पर उनके आरक्षण का क्या प्रभाव पड़ा है। अभी तक जहां-जहां चुनाव हुआ है, वहां-वहां सामाजिक बदलाव की सुगंध फैलने लगी है। महिलाओं की एक-तिहाई भागीदारी का सबसे बड़ा असर उनकी शिक्षा पर पड़ा है क्योंकि जो महिलाएं चुन कर आई हैं, वे गांव की लड़कियों को शिक्षित करने और उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए अपने-अपने क्षेत्र में प्रयत्न कर रही हैं। ग्रामीण महिलाओं की रुचि इस तरफ काफी बढ़ने लगी है। इससे उनमें विश्वास जगा है। भविष्य में वे और कार्यों में भी आगे आएंगी। जो महिलाएं चुन कर आई हैं, वे समाज द्वारा महिलाओं पर हो रहे अत्याचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठा रही हैं। उनका कहना है कि दहेज उत्पीड़न, भ्रूण हत्या और महिलाओं में अशिक्षा एक अभिशाप है। उनके विचार से गांव में ही लड़कियों के पढ़ने के लिए स्कूल हों और इसका निर्माण वे मिल-जुलकर आपसी सहयोग से करें।

पंचायतों के चुनावों से लगभग सभी राज्यों में सरपंचपतियों की एक लंबी-चौड़ी जमात खड़ी कर दी है। यह जमात अप्रत्यक्ष रूप से सरपंच के सारे कार्य करती है जबकि प्रत्यक्ष रूप से महिला ही सरपंच है। मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि सरपंचपतियों की जमात मात्र गांवों तक ही सीमित नहीं है। ये लोग पंचायत समिति और जिला परिषद अध्यक्षों के रूप में भी कार्यरत हैं। नई व्यवस्था के अंतर्गत जो महिलाएं चुन कर आई हैं उनमें से ज्यादातर महिलाएं अनपढ़ हैं, उनको अपने अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में भी कोई जानकारी नहीं है। उनको इसकी जानकारी के लिए प्रशिक्षण बहुत ही जरूरी है। राज्य सरकारों ने अपने-अपने राज्यों में प्रशिक्षण संस्थान खोल रखे हैं लेकिन ये प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरी तरह नहीं चल पा रहे हैं। अभी भी ज्यादातर गांव की चुनी हुई महिलाओं को अपने कर्तव्यों और अधिकारों की जानकारी नहीं है। पंचायतों के सभी स्तर के चुनावों में महिला प्रतिनिधियों ने शिक्षा की कमी को भी महसूस किया है। अक्सर शिक्षित न होने की वजह से वे अपने आपको असहाय तथा कमजोर महसूस करती हैं। चुनाव के समय पुरुषों ने भी इस बात को महसूस किया है। पंचायत चुनाव में निर्वाचित महिलाओं में से ज्यादातर की स्थिति यह है कि इन संस्थाओं में अपने पतियों अथवा परिवारों में अन्य महत्वाकांक्षी पुरुषों का प्रतिनिधित्व करती हैं। वह केवल रबर स्टाम्प है, उनके पीछे कार्य-संचालन उनके पति या अन्य लोग ही करते हैं। लेकिन इसके बावजूद पंचायतों में एक-तिहाई आरक्षण का लाभ पाकर महिलाओं का एक ऐसा वर्ग भी सामने आ रहा है जो कुछ कर दिखाना चाहता है। निश्चय ही समय के साथ ऐसी महिलाओं की संख्या बढ़ेगी जो पुरुषों के सहारे के बिना अपनी स्वतंत्र राजनीतिक तथा सामाजिक भूमिका अदा कर सकेंगी।

इस तरह सभी महिलाओं के स्वतंत्र रूप से अपने अधिकारों का उपयोग करने तथा सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में अपनी निजी भूमिका निभाने में बाधाएं बहुत हैं। लेकिन जिस समाज में महिलाओं का घर से बाहर निकलना तक अच्छा न समझा जाता रहा है, उस ग्रामीण परिवेश में निश्चय ही एक नई चेतना का संचार हुआ है। अब वे एक नई भूमिका में घर से बाहर निकल कर आ रही हैं। आने वाले वर्षों में सकारात्मक परिणाम निश्चय ही सामने आएंगे। आशा है कि भारतीय समाज इस नए बदलाव से अपनी कमजोरियों को दूर करते हुए विकसित रूप से इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करेगा।

नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जो अधिकार और दायित्व ग्राम पंचायतों को सौंपे गए हैं, वे अभी तक किसी भी राज्य में पूर्ण रूप से पंचायतों को हस्तांतरण नहीं किए गए हैं। हम सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं। इस सम्बंध में यदि हम गहराई से विचार करें तो निम्न कारण आड़े आते हैं। इस असफलता के मुख्य कारण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ही हैं। जहां तक राजनीतिक कारणों का प्रश्न है, हमारे

(शेष पृष्ठ 45 पर)

हल्दी पेटेंट : भारतीय विज्ञान और तकनीक की अद्वितीय विजय

डा. नरसिंह बिनानी *

पिछले करीब 2-3 वर्षों से देश की एक आयुर्वेदिक शक्ति (हल्दी) अमरीका की एक पेटेन्ट औषधि बन गयी थी। वास्तव में हुआ यह था कि 28 मार्च 1995 को अमरीका के 'अमेरिकी पेटेंट एण्ड ट्रेड मार्क' कार्यालय ने हल्दी को घाव सुखाने वाली औषधि के रूप में पेटेंट करने की अनुमति दे दी थी। यह औषधि बनाने वाली और पेटेंट प्राप्त करने वाली संस्था मिसीसिपी, अमरीका में स्थित मेडिकल सेंटर था।

अगस्त 1997 में इस अमरीकी कंपनी द्वारा हल्दी से निर्मित औषधि के कराये गये पेटेंट को रद्द कर दिया गया। यह भारतीय आयुर्वेदिक पद्धति की एक बड़ी सफलता मानी जानी चाहिए। भारत में प्राचीन काल से हल्दी का उपयोग, आयुर्वेदिक औषधियों और घरेलू इलाज में किया जा रहा है। अनेक रोगों के उपचार में हल्दी प्रयोग 'रामबाण औषधि' के रूप में किया जाता है।

अमरीकी पेटेंट कार्यालय ने परिषद द्वारा प्रस्तुत समस्त तर्कों तथा साक्ष्यों की जांच की। अंततः 13 अगस्त 1997 को इस कार्यालय ने अपना निर्णय सुनाया और कहा कि हल्दी से सम्बन्धित खोज का पेटेंट नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें कोई नवीनता नहीं है। इसी आधार पर पहले किये गये हल्दी के पेटेंट को रद्द कर दिया। इस प्रकार हल्दी के पेटेंट पर भारत की यह जीत देश के विज्ञान तथा तकनीक की अद्वितीय विजय है।

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के अनुसार बौद्धिक संपदा अधिकार (आई.पी.आर.) के अन्तर्गत किसी भी उत्पाद को उसकी नवीनता और विशिष्ट गुणों के आधार पर पेटेंट कराया जा सकता है। एक बार पेटेंट होने के पश्चात् उस उत्पाद का निर्माण संपूर्ण विश्व में किसी अन्य व्यक्ति या संस्था द्वारा नहीं किया जा सकता है।

जब हल्दी के पेटेंट को स्वीकृति प्रदान कर दी गई, तो यह स्पष्ट हो गया कि अब हल्दी के भारत में आयुर्वेदिक औषधि के रूप में स्वतन्त्र उपयोग पर रोक लग गयी है। हल्दी का यह पेटेंट भारतीय आयुर्वेदिक विचारधारा एवं वैज्ञानिकों के लिए एक खुली चुनौती था। अतः जैसे ही देश में यह सूचना प्राप्त हुई, तो केन्द्र सरकार सहित देश की आयुर्वेदिक पद्धति के चिंतक और हितैषी, विशेषतः कृषि तथा वैज्ञानिक शोध संस्थानों के विद्वान, सतर्क हो गये। इस पेटेंट की स्वीकृति के विरोध के लिए व्यापक विचार-विमर्श प्रारंभ हो गया।

परिणामस्वरूप भारतीय वैज्ञानिक तथा एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने इस पेटेंट के विरुद्ध अपील करने का निर्णय लिया और जून 1996 में वैधानिक रूप से अपील प्रस्तुत की गई।

इस अपील के समर्थन में अनेक तर्क दिए गए। यह बताया गया कि भारत में हल्दी के औषधीय उपयोग के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों तथा अन्य पुस्तकों में विस्तृत संदर्भ समाहित है। परिषद ने इस बात को भी प्रमाणित किया कि हल्दी की औषधियों में उपयोग की जानकारी भारतीयों को अत्यन्त प्राचीनकाल से रही है। यही नहीं, भारत में हल्दी को आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों के रूप में आम लोगों द्वारा प्रयोग किया जाता है। अतः हल्दी के गुणों के आधार पर तैयार किसी भी उत्पाद को बनाने का एकाधिकार किसी एक व्यक्ति या संस्था को नहीं दिया जा सकता।

अमरीकी पेटेंट कार्यालय ने परिषद द्वारा प्रस्तुत समस्त तर्कों तथा साक्ष्यों की जांच की। अंततः 13 अगस्त 1997 को इस कार्यालय ने अपना निर्णय सुनाया और कहा कि हल्दी से सम्बन्धित खोज का पेटेंट नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें कोई नवीनता नहीं है। इसी आधार पर पहले किये गये हल्दी के पेटेंट को रद्द कर दिया। इस प्रकार हल्दी के पेटेंट पर भारत की यह जीत देश के विज्ञान तथा तकनीक की अद्वितीय विजय है। ❑

* वरिष्ठ प्रवक्ता, श्री जैन पी.जी. कालेज, बीकानेर (राजस्थान)

स्वयं को विषाणु जनित यकृतशोथ (पीलिया) से बचाएं

यकृतशोथ (पीलिया) आमतौर पर यकृतशोथ विषाणु के कारण होता है। ये विषाणु दूषित पानी तथा खाद्य पदार्थों के माध्यम से फैलते हैं।

निम्न सावधानियां बरत कर स्वयं को संक्रमण से बचाएं :

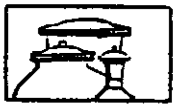

स्वच्छ, ढके हुए तथा छोटे मुंह के बर्तन में रखे साफ पानी को ही पिएं।

खाना खाने से पहले अपने हाथ साबुन से धोएं।

बाजार में बिकने वाले कटे हुए फल तथा सब्जियां न खाएं।

शौचालय जाने के बाद अपने हाथ साबुन या राख से धोएं।

फल और सब्जियों को कच्चा खाने से पहले अच्छी तरह धो लें।

यकृतशोथ 'बी' और 'सी' विषाणु रोगी के शरीर से निकलने वाले तरल पदार्थों अथवा रोग संवाहकों के माध्यम से फैलते हैं। निम्न सावधानियां बरत कर इनसे बचें :

* प्रत्येक इंजेक्शन लगाने के लिए अलग-अलग रोगाणुहीन सुइयों तथा सिरिंजों का इस्तेमाल करें। ध्यान रहे कि शीशे की सिरिंज तथा सुई इस्तेमाल से पूर्व 20 मिनट तक उबाली हुई हो।
* योग्यता प्राप्त डाक्टर के कहने पर ही इंजेक्शन लगवाएं।
* आपरेशन आदि किसी अच्छे अस्पताल में ही कराएं, जहां रोगाणु निवारक सावधानी को उच्च प्राथमिकता दी जाती हो।
* कंडोम का इस्तेमाल करें और असुरक्षित यौन संबंधों से बचें।
* पंजीकृत रक्त बैंकों में जहां यकृतशोथ 'बी' की जांच की जाती हो, से ही रक्त लें।

टिप्पणी :

* आपके क्षेत्र में यदि पानी की लाइन टूटी हो तो उसकी सूचना तुरंत नजदीकी नगर निगम अधिकारियों को दें।
* अपने क्षेत्र में पीलिया का कोई रोगी नजर आए तो उसकी सूचना तुरंत नजदीकी स्वास्थ्य केन्द्र को दें।
* यकृतशोथ 'बी' की वैक्सीन (टीका) बाजार में उपलब्ध है, इसके उपयोग के बारे में डाक्टर से सलाह लें।

davp 97/703

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

आत्म सुधार के लिए गांव चलो!

सत्यदेव विद्यालंकार

"आजकल यहां 'गांव चलो आंदोलन' बड़े जोर-शोर से चल रहा है। शहरों से हजारों बुद्धिजीवी गांवों में जा रहे हैं—किसान बनने, मजदूर-वर्ग का नज़रिया अपनाने। चारों ओर उत्साह की एक अनोखी लहर फैल रही है। विदेशी भाषा प्रकाशन गृह से भी प्रायः सभी ने गांव में जाकर किसान की जिंदगी बसर करने की ख्वाहिश जाहिर की है। लेकिन सबको गांव जाने का मौका अभी नहीं मिल पाएगा क्योंकि प्रकाशन का काम जारी रखना जरूरी है। लेकिन आने वाले दस साल में लगभग सभी बुद्धिजीवियों को कम-से-कम एक साल खेतों या कारखानों में काम करने का मौका मिलेगा। काश! हमारे देश में भी इसी तरह की कोई योजना चल पाती, जिससे दिमागी और जिस्मानी काम करने वालों के बीच की खाई पट सकती।"—ये पंक्तियां जनवादी चीन की राजधानी पीकिंग में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह में काम करने वाले एक भाई के निजी पत्र में से ली गई हैं। उनका नाम इसलिए नहीं दिया जा रहा कि उसके लिए उनकी अनुमति नहीं ली जा सकी है। उनके इस पत्र के कुछ दिन बाद मुझे पीकिंग से प्रकाशित होने वाले 'चीन सचित्र' का ताजा अंक देखने को मिला। यह पत्र एशिया और यूरोप की 14 भाषाओं में प्रकाशित होता है। उनमें चीनी, मंगोल, तिब्बती और बेबुर, जनवादी चीन की भाषाएं हैं। शेष 10 में 6 एशियाई हैं और बाकी चार यूरोपीय। चीनी के बाद हिंदी का प्रमुख स्थान है।

कुरुक्षेत्र, अप्रैल 1958 अंक से उद्धृत

इसका कवर पृष्ठ उलटते ही जो पहला लेख देखने में आया, उसका शीर्षक है—"आत्म सुधार के लिए 'गांव चलो' का नारा।" लेख के साथ पांच चित्र भी दिए गए हैं। उनमें उन अध्यापकों और कर्मचारियों के गांवों की ओर जाने के कुछ दृश्य दिखाए गए हैं जो चीनी जन विश्वविद्यालय के काम से छुट्टी लेकर पीकिंग के नज़दीक सहकारी फार्मों में जाकर किसानों के साथ कम-से-कम तीन साल तक काम करेंगे। उनमें से कुछ हमेशा के लिए गांवों में बस जाने का इरादा कर चुके हैं। उनकी संख्या 600 से अधिक है। इसी प्रकार हर सरकारी विभाग और संस्थाओं के कर्मचारी और अधिकारी खेतों में किसानों और कारखानों में मजदूरों के साथ जाकर काम करने और उन्हीं के साथ बस जाने के लिए स्वेच्छा से राय दे रहे हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनको एक साथ देहातों में जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसके दो कारण हैं। एक तो शहरी तथा सरकारी काम-काज को एकाएक अस्त-व्यस्त नहीं किया जा सकता और दूसरा यह कि देहातों तथा कारखानों पर शहरी लोगों का एकाएक इतना भार नहीं डाला जा सकता, जो कि उनके लिए असह्य हो जाए। दोनों ओर का संतुलन बनाए रखना जरूरी है।

इसमें शक नहीं कि राष्ट्र-निर्माण का कोई भी छोटा या बड़ा काम केवल नारों से नहीं किया जा सकता, किंतु यह भी सच है कि लोगों में उत्साह पैदा कर उनको नई दिशा दिखाने के लिए ये नारे जादू कर सकते हैं। जनवादी चीन में इन नारों ने लोगों में नया जीवन और नया उत्साह पैदा करने में कमाल कर दिखाया है। इस नए नारे का विशेष महत्व है। कुछ ही दिन पहले समाचार पत्रों में यह पढ़ने को मिला था कि चीन के देहाती लोग शहरी जीवन की ओर बहुत तेजी से आकर्षित हो रहे हैं और उन्होंने गांव छोड़ कर शहरों की ओर आना शुरू कर दिया है। कम या अधिक मात्रा में यह समस्या प्रायः सभी देशों में पाई जाती है और यह वर्तमान औद्योगिक विकास की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। शहरी जीवन में जो सुख-सुविधा, जीवन-निर्वाह के साधन और दूसरे आकर्षण हैं, वे गांव वालों को शहरों की ओर खींच रहे हैं। देहात और शहर में बहुत बड़ा अंतर है। दोनों के बीच एक खाई-सी खुदी हुई है। जैसे एक धर्मान्ध व्यक्ति कल्पित स्वर्ग के पाने की अभिलाषा से तीर्थ स्थानों, मठों और मंदिरों की दर-दर खाक छानता फिरता है, ठीक वैसे ही देहातों के लोग शहरी जीवन में स्वर्ग पाने के लिए भटकने लग जाते हैं। शहरी स्वर्ग उनको मिलता नहीं और वे अपने देहाती स्वर्ग को भी बिगाड़ लेते हैं।

कुछ वर्ष पहले भारत सरकार ने इस समस्या की गहराई में जाकर उसके दुष्परिणामों को जानने के लिए एक विदेशी विशेषज्ञ को बुला कर कुछ जांच की थी। उसने बड़े-बड़े औद्योगिक केंद्रों का विशेष रूप से दौरा करके इस समस्या का अध्ययन किया था। अपनी रिपोर्ट में उसने यह बताया था कि देहातों की ही नहीं अपितु सारे देश की उससे कितनी बड़ी हानि हो रही है। उसका कहना यह था कि देहातों से शहर आने वाले लोग औद्योगिक केंद्रों में आने के बाद कारखानों में काम करते हुए तीन पीढ़ी से अधिक

जीवित नहीं रहते। किसी भी राष्ट्र की यह कितनी बड़ी हानि है। शहरों में बेकारी, भुखमरी, बीमारी तथा दूसरी मुसीबतें फैलती रहती हैं और देहातों में खाद्य पदार्थों तथा दूसरे कच्चे माल की उपज घटती रहती है। हमारा देश कृषि प्रधान है। उसका सारा अर्थशास्त्र खेती की उपज पर केंद्रित है और खेती की उपज निर्भर है—मनुष्य और पशु शक्ति पर। पशुओं की कमी को आधुनिक मशीनरी से कुछ अंशों में पूरा किया जा सकता है, परंतु मशीनरी पूरी तरह न तो पशुओं का स्थान ले सकती है और न मनुष्य का। रूस तथा अन्य देशों के छोटे-बड़े सामूहिक या सहकारी कार्यों पर, पशु-पालन को खेती के समान ही महत्व दिया जाता है। दूध, घी, मक्खन, ऊन, चमड़ा और हड्डी व खाद आदि की जरूरत को जिस रूप में पशु पूरी कर सकते हैं, उस रूप में मशीनरी नहीं कर सकती। शहरी जीवन में अनैतिकता, अनाचार तथा भ्रष्टाचार आदि के जो कीटाणु देहातों में फैलते हैं, वे औद्योगिक केंद्रों के कारण फैलते हैं, उसकी चर्चा यहां नहीं की जा रही है। कुल मिला कर यह समस्या ऐसी है कि उस पर अविलंब ध्यान दिया जाना चाहिए।

जनवादी चीन में इस समस्या को हल करने के लिए जो नारा बुलंद किया गया है, उसे आत्म-सुधार के लिए आवश्यक बताया गया है। आत्म- सुधार का अर्थ हमारे देश में बहुत ऊंचा माना जाता है और उसका संबंध नैतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक सुधार के साथ जोड़ दिया गया है। परंतु जनवादी चीन का आत्म-सुधार जनता के भौतिक अथवा शारीरिक सुधार के साथ ही विशेष संबंध रखता है। वहां के नेता हमारे इस सिद्धांत के पुजारी हैं कि निर्बल या दुर्बल व्यक्ति आध्यात्मिक सुधार नहीं कर सकता और यह देह ही सब प्रकार की धर्म साधना का एक-मात्र साधन है। इसलिए वहां का और अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों का भी आत्म-सुधार जनता के भौतिक सुधार से प्रारंभ होता है। चीन के लोग इसी भौतिक सुधार में प्राणपण से लगे हुए हैं और वे अपने शहरों तथा देहातों पर समान रूप से ध्यान दे रहे हैं। परंतु उनके सामने इससे भी बड़ा एक और आदर्श है। हमने भी पिछले वर्षों में उसको अपना लिया है।

वह आदर्श है—समाजवाद का। उस आदर्श के अनुसार समाजवादी समाज का निर्माण करने के लिए गरीबी और अमीरी के अंतर को न्यूनतम करना जरूरी है। हमारे देश के गांव गरीबी के और शहर गांवों की अपेक्षा अमीरी के प्रतीक बने हुए हैं। दोनों के इस अंतर को मिटाए बिना समाजवादी निर्माण हो ही नहीं सकता। गरीबी-अमीरी के समान देहाती और शहरी लोगों में एक और अंतर है—शारीरिक श्रम और बुद्धिवाद का। देहाती जनता अधिकतर शारीरिक श्रम पर और शहरी जनता अधिकतर बुद्धिजीवी होने से बुद्धिवाद पर निर्भर है। इसमें बुराई यह है कि शारीरिक श्रम को बुद्धिवाद की अपेक्षा हीन माना जाने लग गया है। हमारे समाज के सदियों के परंपरागत संस्कार और विचार कुछ ऐसे बन गए हैं कि शारीरिक श्रम करना शूद्र का काम माना जाकर उसको समाज में सबसे निचला स्थान दिया गया है और बुद्धिजीवी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य उसके श्रम पर गुलछर्रे उड़ाते हुए भी अपने को उसकी अपेक्षा बहुत ऊंचा मानते हैं। हमारी सारी ही परंपरागत धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था इस अन्याय की पोषक है। जन्म की आकस्मिक घटना और जात-पात की रूढ़िगत अवस्था के साथ इस अन्याय के जुड़ जाने से वह और भी भयानक बन गया है। यदि उस सारी व्यवस्था के विरोध में समाजवादी आदर्श को युग-धर्म के रूप में अपनाया गया है, तो श्रम और बुद्धि के नाम से पैदा किए गए इस अंतर तथा अन्याय को भी दूर करना ही होगा। समाजवादी निर्माण में यह सहन नहीं किया जा सकता कि एक आदमी दिन-रात खून-पसीना एक करके भी आधा पेट भूखा रहे और दूसरा बिना हाथ-पैर डुलाए संसार का सुख, ऐश्वर्य और वैभव को भोगता रहे। भूख और भोग के इस जन्मसिद्ध अंतर को मिटाए बिना समाजवादी नव-निर्माण किया ही नहीं जा सकता।

जनवादी चीन में आत्म-सुधार के लिए अथवा समाजवादी निर्माण के लिए जो नया नारा बुलंद किया गया है, उसके एक आह्वान से चारों ओर एक नया उत्साह पैदा हो गया है। दफ्तरी बाबुओं, लेखकों, कवियों, कलाकारों अध्यापकों और सरकारी अधिकारियों में गांवों में जाने की एक होड़ लग गई है। यह उनके लिए उस समाजवादी नवनिर्माण की पुकार है, जिसमें शहर व देहात का, दिमाग व श्रम का और अमीर व गरीब का सारा भेदभाव मिटा दिया जाएगा। जैसे कि श्रम से दूर भागने वाला व्यक्तिगत उन्नति, विकास और प्रगति नहीं कर सकता, ठीक वैसे ही श्रम का अनादर करने वाला समाज, देश अथवा राष्ट्र भी प्रगति या नवनिर्माण नहीं कर सकता। शारीरिक श्रम को नीचा समझने की भावना पर विजय पाना और बुद्धिजीवी तथा मेहनतकश के बीच की खाई को पाटना इस अभियान, आह्वान या पुकार का मुख्य प्रयोजन है। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि देहातों की अभावग्रस्त स्थिति को सुधार कर उनके जीवनयापन के धरातल को सुख-सुविधा आदि की दृष्टि से शहरों की बराबरी में लाया जाए। ऐसा यदि एकाएक नहीं किया जा सकता, तो दिमागी काम करने वाले शहरी लोगों को देहातों में जाकर, वहां जैसी भी परिस्थितियां हैं, उनमें देहातियों की तरह रहना चाहिए।

हमारे देश में भी यह प्रयोग अपने ढंग से लिया गया है और किया जा रहा है। गांधी जी के नेतृत्व में खादी आदि ग्रामोद्योगों की उन्नति करने का प्रयत्न इसी दृष्टि से किया गया। उसका प्रत्यक्ष फल चाहे इतना न मिला हो, परंतु मनोभावना में क्रांति पैदा करने के रूप में कुछ अंशों में लाभ अवश्य मिला है। उनके हरिजन आंदोलन का लक्ष्य भी यही था। उन्होंने आर्थिक अंतर को दूर करने की अपेक्षा सामाजिक तथा धार्मिक अंतर को दूर करने पर अधिक जोर दिया। उसमें वे काफी सफल हुए। वर्तमान में हम अपनी पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा अपने राष्ट्र के चहुंमुखी नवनिर्माण के प्रयत्न में लगे हुए हैं। छोटे-बड़े उद्योगों का विकास करके हम शहरों और देहातों का समान रूप से विकास करना चाहते हैं। हमारी सामुदायिक और राष्ट्रीय विस्तार योजनाओं का एक-मात्र उद्देश्य देहातों में नए जीवन का संचार करना है। समाजवादी आदर्श को स्वीकार करने के बारे में इस नवनिर्माण के कार्य में हम और अधिक प्रयत्नशील हैं। जनवादी चीन का यह नारा और अभियान हमारे लिए नई प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह को देने वाला सिद्ध हो सकता है। हमें उसका अध्ययन इसी दृष्टि से करना चाहिए। ❑

ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

डा. अनुराधा, डा. रवि शंकर जमुआर

भारत गांवों का देश है। यहां की तीन-चौथाई जनसंख्या गांवों में निवास करती है। अतएव गांवों के विकास पर ही भारत का विकास निर्भर है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से देश के चतुर्दिक विकास हेतु योजनाबद्ध विकास की प्रणाली अपनाई गई और पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गईं। यद्यपि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन से अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास हुआ है और ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में भी सुधार हुआ है, लेकिन विकास की यह गति पर्याप्त नहीं है। आज भी भारतीय अर्थ-व्यवस्था विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं, आवास तथा पेयजल की कमी, ऊर्जा संकट, सड़क और संचार सुविधाओं का अभाव इत्यादि देखने को मिलते हैं।

भारत में योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया केन्द्रीकृत होने के कारण उसमें लोगों की सहभागिता नहीं के बराबर रही है। परिणामत: लोगों में योजनाओं के प्रति कोई लगाव या उत्साह नहीं रहा और अज्ञानतावश उन्हें उन योजनाओं का पर्याप्त लाभ भी नहीं मिल सका है। भारत में क्षेत्रीय विषमताएं व्यापक रूप में हैं। इसलिए योजनाओं के निर्माण में क्षेत्र-विशेष की प्रकृति को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसके लिए विकेन्द्रीकृत योजना प्रक्रिया अपनाने की आवश्यकता है। यही कारण है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में लोगों की सहभागिता को योजना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया गया और विकेन्द्रीकरण को प्राथमिकता दी गई। 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को अपनाना, इसी विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया का परिणाम है।

पंचायती राज व्यवस्था

हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था का स्वरूप प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का यह मानना था कि रामराज्य की परिकल्पना तभी संभव हो सकती है, जब वह निचले स्तर तक लोगों की भागीदारी पर आधारित हो। वास्तव में सच्चे लोकतंत्र का क्रियान्वयन ग्रामीणों द्वारा ही हो सकता है। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि ''भारत के सच्चे लोकतंत्र की इकाई गांव ही हैं।'' भारतीय संविधान के अनुच्छेद-40 में स्पष्ट रूप से यह उल्लिखित है ''ग्राम पंचायतों को संगठित करने और उन्हें ऐसी शक्तियां तथा अधिकार प्रदत्त कराने के लिए राज्य कदम उठाएगा, जो उन्हें स्वशासी इकाइयों के रूप में काम करने के योग्य बनाने के लिए जरूरी होंगे।'' इसलिए संविधान लागू होने के बाद से ही देश में पंचायती राज व्यवस्था को राष्ट्रीय जीवन का हिस्सा बनाने का प्रयास किया जाता रहा। सन् 1952 में भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किया गया ताकि योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया में लोगों का सहयोग प्राप्त करते हुए उनके जीवन-स्तर में सुधार लाया जा सके। इसी दृष्टि से देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्तूबर 1959 को नागौर में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया का प्रारंभ कर, पंचायती राज व्यवस्था का बीजारोपण किया था। फिर भी, इन प्रयासों के बावजूद इस कार्यक्रम को वांछित सफलता नहीं मिली। फलत: कार्यक्रम की खामियों के अध्ययन तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव देने हेतु बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया।

मेहता समिति

बलवंत राय मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट में तीन सोपानों वाली स्थानीय सरकार की सिफारिश की जिसमें निम्न स्तर पर ग्राम पंचायत और जिला स्तर पर जिला परिषद तथा इन दोनों के मध्य प्रखंड स्तर पर पंचायत समिति स्थापित करने की अनुशंसा की थी। इस समिति की सिफारिशों को सर्वप्रथम राजस्थान तथा आंध्र प्रदेश और उसके बाद लगभग देश के सभी राज्यों में लागू किया गया। लेकिन विभिन्न कारणों से ये स्थानीय संस्थाएं ज्यादा दिन तक कार्य नहीं कर सकीं। इन स्थानीय संस्थाओं को न तो समुचित अधिकार दिए गए थे और न ही इन्हें पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध कराए गए थे। परिणामत: धीरे-धीरे ये संस्थाएं मृतप्राय हो गईं।

सरपंचों, मुखिया तथा अन्य चुने हुए प्रतिनिधियों को वर्ष में कम-से-कम एक बार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे वे पंचायतों के क्रिया-कलापों का सफलतापूर्वक निष्पादन कर सकें। स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रबल आवश्यकता है। अतएव पंचायतों को आय के ऐसे स्रोत राज्य सरकारों द्वारा हस्तांतरित किए जाने चाहिए जिससे इन संस्थाओं की स्वयं की आय हो सके और जिसे ये संस्थाएं अपने विवेक से लोगों के उत्थान तथा कल्याण पर स्वतंत्र रूप से व्यय कर सकें।

अन्य समितियां

संपूर्ण देश में जब पंचायती राज संस्थाएं मृतप्राय हो गईं तो इनका पुनरीक्षण करने के लिए कुछ अन्य समितियों का गठन किया गया जिसमें अशोक मेहता समिति तथा एल.एम. सिंघवी समिति प्रमुख हैं। सन् 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने 1978 में अपनी रिपोर्ट सरकार को पेश की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में 'मंडल पंचायतों' की स्थापना की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त समिति ने पंचायती राज चुनाव कराने की भी सिफारिश की। पुन: सन् 1986 में एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में एक अन्य समिति गठित की गई। सिंघवी समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं को स्वशासित संस्थाओं के रूप में विकसित करने की सिफारिश की। साथ ही समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के संवैधानीकरण करने की भी सिफारिश की। इन विभिन्न समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय संविधान में 73वां संशोधन किया गया और 24 अप्रैल 1993 से पंचायती राज अधिनियम बना।

मुख्य व्यवस्थाएं

73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज व्यवस्था के लिए कई महत्वपूर्ण व्यवस्थाएं की गई हैं जो निम्न प्रकार हैं :

- बीस लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय (अर्थात ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर तथा जिला स्तर) स्वरूप का प्रावधान किया गया है जबकि बीस लाख से कम आबादी वाले राज्यों में पंचायती संस्थाओं के केवल दो स्तरों—ग्राम पंचायत और जिला परिषद का प्रावधान है।
- पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव पांच वर्ष के अंदर अनिवार्य रूप से कराने की व्यवस्था की गई है। यदि कोई पंचायत भंग कर दी जाती है तो उसके चुनाव छह माह के भीतर कराने की व्यवस्था की गई है।
- पंचायतों के चुनाव के लिए मतदाता सूचियां तैयार करने और चुनाव के संचालन के लिए एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है।
- अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए जनसंख्या के हिसाब से पंचायतों में आरक्षण की व्यवस्था की गई है जबकि कुल एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं।
- पंचायतों के प्रशासनिक अधिकारों तथा वित्तीय साधनों का निर्धारण राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।
- राज्य सरकारों द्वारा प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर वित्त आयोग गठित करने का प्रावधान किया गया है ताकि राज्य की वित्तीय स्थिति और बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान में रख कर आयोग अपनी सिफारिशें राज्य सरकारों दे सके।
- राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह पंचायतों को कर वसूलने की अनुमति दे अथवा राजस्व का कुछ भाग पंचायतों को उपलब्ध कराने के संबंध में स्वयं निर्णय ले।
- पंचायतों को अत्यधिक सशक्त बनाने के उद्देश्य से यह व्यवस्था की गई है कि राज्य विधान मंडल चाहे तो उन्हें अन्य आवश्यक अधिकार यथा—आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण, सामाजिक न्याय आदि से संबंधित कार्यक्रम तैयार करने की छूट दे सकता है।

प्रगति

पंचायती राज अधिनियम के पारित होने के पश्चात सभी राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने की दिशा में तेजी से प्रगति हुई है। मध्य प्रदेश देश का पहला राज्य है जिसने 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों का गठन किया। बिहार को छोड़ कर लगभग सभी राज्यों में पंचायतों के चुनाव सम्पन्न हो गए हैं। महिलाओं को भी पर्याप्त संख्या में प्रतिनिधित्व मिला है। 2 अगस्त 1997 को नई दिल्ली में आयोजित 'पंचायती राज मुख्यमंत्री सम्मेलन' में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने पंचायतों को अधिक से अधिक अधिकार देने का आह्वान किया ताकि ये स्थानीय सरकारें सफलतापूर्वक कार्य कर सकें। साथ ही, उन्होंने मुख्यमंत्रियों से यह अपील भी की कि इन स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन उपलब्ध कराएं क्योंकि संस्थाओं का सफल संचालन काफी हद तक वित्त की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इस सम्मेलन में मुख्यमंत्रियों ने पंचायतों को अधिक से अधिक अधिकार तथा समुचित वित्त उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया है।

मूल्यांकन

सरकार द्वारा पारित पंचायती राज अधिनियम अधिकारों के विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय लोगों में उत्तरदायित्व स्थापित करने की दिशा में निश्चय ही एक ठोस कदम है। यह पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक आधार प्रदान करते हुए विकास प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करता है। इस अधिनियम से पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव की अवधि को निश्चितता मिली है। प्रत्येक पांच वर्ष में चुनाव की अनिवार्यता और पंचायतों के भंग होने की स्थिति में छह माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था, एक प्रशंसनीय कदम है। ये दोनों व्यवस्थाएं एक तरह से राज्य सरकारों तथा अफसरशाही पर नियंत्रण रखने में निश्चय ही कारगर सिद्ध होंगी। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखने के प्रावधान से जहां पिछड़े वर्ग के लोगों को प्रतिनिधित्व मिलेगा, वहीं गांवों में समानता तथा भातृत्व की भावना का भी विकास होगा। इसी तरह महिलाओं के लिए पंचायतों में एक-तिहाई स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था के विकास कार्यों में उनकी सक्रियता बढ़ेगी। यह सत्य है कि भारतीय समाज में महिलाओं का विशिष्ट स्थान तथा महत्व है। लेकिन जहां तक उन्हें पद और अधिकार देने की बात है, वहां उनकी भूमिका नगण्य हो जाती है। ग्रामीण महिलाएं आज भी काफी पिछड़ी हुई हैं और किसी भी तरह का निर्णय लेने में उनकी सक्रिय भागीदारी नहीं है। इस विधेयक द्वारा इस असंगति को दूर करने का प्रयास किया गया है। इससे महिलाओं में निश्चय ही एक नई जागृति आएगी और ग्रामीण विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

कठिनाइयां

नि:संदेह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज के उद्देश्य की प्राप्ति पंचायती राज से पूरी की जा सकती है। लेकिन केवल कानूनी प्रावधान किसी व्यवस्था की सफलता की गारंटी नहीं हो सकते। गांवों में अशिक्षा तथा अज्ञानता सर्वत्र विद्यमान है और लोगों के विचारों में रूढ़िवादिता तथा संकीर्णता की प्रधानता है। लोग जाति तथा वर्ग के आधार पर बंटे हुए हैं। यद्यपि पंचायतों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थान आरक्षित हैं,

लेकिन इन स्थानों के लिए दलगत राजनीतिक गुटबंदी के कारण एक ओर जहां सुयोग्य महिला उम्मीदवारों का आगे आना कठिन है, वहीं दूसरी ओर कमजोर वर्गों की महिला प्रतिनिधि सामाजिक कारणों से अपनी भूमिका कारगर ढंग से नहीं निबाह पा रही हैं। इन्हीं कठिनाइयों के कारण पंचायती राज व्यवस्था की सफलता कुछ संदिग्ध हो जाती है।

सुझाव

यद्यपि पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने में अशिक्षा, अज्ञानता, रूढ़िवादिता तथा विचारों में संकीर्णता जैसे कुछ तत्व अवरोध उत्पन्न करते हैं, लेकिन राष्ट्रीय साक्षरता अभियान, वयस्क शिक्षा कार्यक्रम और शिक्षा के प्रसार आदि को जन-आंदोलन का रूप देकर इन अवरोधों को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयासों से लोगों, विशेषकर ग्रामीणों, में जागरूकता आएगी और वे अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति सचेष्ट होंगे। महिलाओं में भी आत्मविश्वास प्रस्फुटित होगा और उनमें निर्णय लेने की क्षमता विकसित होगी। पंचायतों का सुचारू रूप से संचालन कार्य-कुशल व्यक्तियों के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से पंचायती राज प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था वांछनीय है। सरपंचों, मुखिया तथा अन्य चुने हुए प्रतिनिधियों को वर्ष में कम-से-कम एक बार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे वे पंचायतों के क्रियाकलापों का सफलतापूर्वक निष्पादन कर सकें। स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रबल आवश्यकता है। अतएव पंचायतों को आय के ऐसे स्रोत राज्य सरकारों द्वारा हस्तांतरित किए जाने चाहिए जिससे इन संस्थाओं की स्वयं की आय हो सके और जिसे ये संस्थाएं अपने विवेक से लोगों के उत्थान तथा कल्याण पर स्वतंत्र रूप से व्यय कर सके। पंचायतों के चुनाव संबंधी कानूनी प्रावधान का कड़ाई से पालन किया जाना भी आवश्यक है ताकि चुनाव समय पर और नियमित रूप से कराया जा सकें।

निष्कर्ष

इस प्रकार यदि पंचायती राज अधिनियम के प्रावधानों को पूरी निष्ठा तथा तत्परता से लागू किया जाए और इसके क्रियान्वयन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के समाधान हेतु उक्त सुझावों के साथ-साथ राष्ट्रीय संकल्प लिया जाए तो निश्चय ही पंचायती राज व्यवस्था विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। पंचायतों की स्थापना से जहां क्षेत्रीय विकास में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित होगी, वहीं जन-साधारण को अपनी स्थानीय समस्याओं के समाधान में अधिक भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ेगी। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) जो एक अप्रैल 1997 से लागू हुई है, में ग्रामीण विकास संबंधी अधिकांश योजनाओं को क्रियान्वित करने में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को एक महत्वपूर्ण एजेन्सी के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, दस लाख कुंएं, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम और अन्य कल्याणकारी तथा विकासात्मक कार्यक्रमों को लागू करने में प्रोत्साहन मिलेगा, ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार होगा और ग्रामीण विकास को एक नई दिशा मिलेगी। ❑

(पृष्ठ 38 का शेष) **नई पंचायती राज व्यवस्था : कहां तक कारगर...**

देश में विकास का आधार ग्रामीण विकास रहा है। आर्थिक कारणों पर यदि हम नजर डालते हैं तो हम पाते हैं कि किसी भी विकास परियोजना के आरंभ होने से पूर्व उसके लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाती है परंतु समय से धन प्राप्त न होने के कारण काम पर प्रतिकूल असर पड़ता है। अत: किसी भी विकास योजना को सफल बनाने के लिए संबंधित विभागों को यह ध्यान रखना चाहिए कि धन तथा संसाधनों का प्रबंध समय से किया जाए। तीसरा और अंतिम कारण है—सामाजिक रचना। बहुत-सी योजनाएं समाज के प्रतिरोध करने के कारण अवरुद्ध हो जाती हैं। इन विकास कार्यों में समाज को भी पूरा सहयोग देना चाहिए।

नई पंचायती राज व्यवस्था के बारे में केन्द्रीय ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय द्वारा आयोजित मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन, जो 7 अगस्त 1997 को दिल्ली में आयोजित किया गया, उसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री इन्दर कुमार गुजराल ने जिन मुद्दों को सामने रखा, वह बहुत ही अहम हैं। उन पर राज्य सरकारों को ध्यान देना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि पंचायतों को वास्तव में अधिकारों और संसाधनों का हस्तांतरण करके ही ग्राम स्वराज का गांधी जी का सपना पूरा किया जा सकता है।

श्री गुजराल ने पंचायती राज के माध्यम से ग्राम स्तर पर लोकतंत्र की शुरुआत को स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि बताया। उन्होंने कहा कि हमें निचले स्तर की संस्थाओं में भय की भावना को हटाकर उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा। उन्होंने कहा कि देश की आजादी का यह पचासवां वर्ष होने पर यदि कोई मुझसे पूछे कि इन पचास वर्षों की मुख्य उपलब्धि क्या है तो मैं पंचायती राज की पुनर्स्थापना को इन वर्षों की मुख्य उपलब्धि मानूंगा।

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नई पंचायती राज व्यवस्था में पंचायतों को संवैधानिक दर्जा दिलाने के लिए जो प्रावधान हैं, उनके अधिकारों और दायित्वों को पूरा करने के लिए जो भी बाधाएं सामने आ रही हैं, उन पर विचार किया जाए। मुख्य रूप से हम कह सकते हैं कि राज्य सरकारें पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियों के हस्तांतरण की प्रक्रिया यथाशीघ्र पूरी करें। राज्य सरकारें संविधान संशोधन की आगे की कार्रवाई के रूप में पंचायती राज संस्थाओं को प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियां सौंपे और विकास कार्यों को शुरू करने में तेजी लाएं, तभी यह प्रणाली सफल हो सकती है।

यह भी सुस्पष्ट है कि जब तक राज्य सरकारें पंचायती राज प्रणाली को पूरी ईमानदारी से लागू नहीं करतीं तथा इन निकायों को मजबूत नहीं करतीं, तब तक नई पंचायती राज प्रणाली पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती।

पंचायती राज प्रणाली के प्रभावशाली कार्यान्वयन के जरिये जब लोगों को वास्तविक अधिकार सौंपे जाएंगे, तब ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलेगा, अंततोगत्वा सामाजिक न्याय के एक नये युग का सूत्रपात होगा। ❑

मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले में किया गया अध्ययन

नई पंचायती राज व्यवस्था में सरपंचों की भूमिका

नसरुननिशा *

संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था कानून के रूप में पूरे देश में 24 अप्रैल 1993 से एक साथ लागू हो गई। मध्य प्रदेश की विधान सभा में 30 दिसम्बर 1993 को मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 पारित किया गया। यह अधिनियम पूरे मध्य प्रदेश में 25 जनवरी 1994 को लागू हो गया। पूरे देश में मध्य प्रदेश पहला राज्य है जहां संविधान के 73वें संशोधन के पालन में तीन स्तरीय पंचायती राज प्रणाली स्थापित हो गई।

पंचायती राज व्यवस्था जन-सामान्य के स्तर पर लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व करती है। ग्रामीण स्तर पर लोगों की सक्रिय भागीदारी ही लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सफलता सुनिश्चित करती है। जनता को वास्तविक शक्ति का हस्तांतरण ही इस प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। यह व्यवस्था स्थानीय जन-सामान्य को शासन के कार्य में भागीदार बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

पंचायती राज को क्रियान्वित करने का दायित्व सरपंच व पंच को सर्वाधिक है। सरपंच के अधिकार क्षेत्र में बैठक बुलाना, निर्णय लेना, मानिटरिंग, विभिन्न विभागों से तालमेल और संपर्क बनाना; ग्राम विकास की योजनाएं बनाना, लागू करना तथा निरीक्षण करना; गांव तथा पंचायत के अन्य प्रतिनिधियों को मार्गदर्शित करना; प्रचार-प्रसार तथा गांव का सर्वांगीण विकास और वित्तीय व्यवस्था को सुनिश्चित कर संपूर्ण कार्य को दिशा प्रदान करना है।

ग्राम पंचायत के कर्तव्य और अधिकार

ग्राम पंचायत के पास प्रमुख रूप से गांव का पूरा नागरिक प्रशासन रहता है। ग्राम पंचायत को स्थानीय प्रशासन कुशलतापूर्वक चलाने के लिए अनेक अधिकार दिए गए जैसे—सुरक्षा संबंधी, सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएं, निर्माण अतिक्रमण संबंधी, हाट बाजार तथा मेलों संबंधी, असहाय और निराश्रितों की सहायता करने संबंधी इत्यादि।

कृषि और कृषि विस्तार कार्य, भूमि सुधार और भूमि संरक्षण, लघु सिंचाई जल प्रबंधन और जल फैलाव का विकास, पशु पालन, डेयरी उद्योग, मछली पालन, सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी और लघु वनोपज, लघु उद्योग जिसमें खाद्य उद्योग भी शामिल हैं, खादी ग्रामोद्योग तथा कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, ईंधन और चारा, पेयजल, सड़क, पुलिया, पुल, जल कार्य और आवागमन के अन्य साधन, ग्रामीण विद्युतीकरण, विद्युत का वितरण और अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय और सांस्कृतिक गतिविधियां, बाजार और मेले, स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र तथा औषधालय, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण, कमजोर वर्गों का कल्याण विशेषत: अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के लोक वितरण पद्धति इत्यादि कार्यों का अतिरिक्त दायित्व पंचायत को है।

सरपंच, एक उपकरण के रूप में कार्यक्रम को क्रियान्वित कर आदर्श ग्राम स्थापित करने में योगदान देता है। इससे समग्र तथा सतत विकास के लिए और गांव को आत्मनिर्भर तथा सक्षम बनाने के लिए कार्य हो रहा है।

अध्ययन

ग्राम पंचायत में सरपंच पदों पर निर्वाचित जनप्रतिनिधि पंचायती राज की मूल अवधारणाओं के अनुरूप किस प्रकार कार्य कर रहे हैं, उनकी

* अन्वेषिका, जिला साक्षरता समिति, साक्षरता भवन, दुर्ग (म.प्र.)

प्राथमिकताएं क्या हैं, उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर कैसा है आदि इस अध्ययन के प्रमुख केन्द्र हैं। अध्ययन के लिए दुर्ग जिले का चयन किया गया है।

अध्ययन दुर्ग जिले के 12 विकास खंडों में से 6 विकास खंडों—साजा, बेरला, गुरूर, डौण्डी, दुर्ग, बालोद को निदर्शन पद्धति के आधार पर चयनित किया गया। प्रत्येक विकास खंड से 10 ग्राम पंचायत को दैव निदर्शन पद्धति के आधार पर चयन कर, उसमें से 50 प्रतिशत महिला सरपंच तथा 50 प्रतिशत पुरुष सरपंच का चयन किया गया।

शोध कार्य के अंतर्गत 30 महिला सरपंच 18 से 55 वर्ष के बीच और पुरुष सरपंच 18 से 52 के बीच की उम्र के हैं। जिसमें से 16.66 प्रतिशत मात्र सामान्य वर्ग, 13.33 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 23 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति, 37 प्रतिशत पिछड़े वर्ग के हैं। अधिकतर सरपंच प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक तक शिक्षा प्राप्त हैं तथा महिला सरपंचों 13 प्रतिशत नवसाक्षार भी हैं। शिक्षा का स्तर भी सामान्य से अच्छा है (निरक्षर 24 प्रतिशत)।

सरपंचों के परिवार के अधिकांश सदस्य कृषि कार्य से जुड़े हुए हैं तथा एक-चौथाई ही नौकरी करते हैं। शत-प्रतिशत महिलाएं पहली बार सरपंच बन सकी हैं जिससे स्पष्ट है कि महिला आरक्षण के फलस्वरूप ही महिलाओं को नई पंचायत में सरपंच के रूप में स्थापित होने का मौका मिला है।

सरपंचों के आर्थिक स्तर के अध्ययन से स्पष्ट है कि वे सामान्यत: आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं। 80 प्रतिशत सरपंचों के पास 5-12 एकड़ जमीन है। 38 प्रतिशत सरपंच 4,000-6,000 रुपये मासिक आय वर्ग में आते हैं, जबकि 31 प्रतिशत सरपंच 2,000 रुपये तक की मासिक आय अर्जित करते हैं। महिला सरपंचों का 13 प्रतिशत वर्ग मुख्य व्यवसाय के रूप में मजदूरी करते हैं। 33 प्रतिशत महिला सरपंचों की मासिक पारिवारिक आय 2,000 रुपये से कम है, 25 प्रतिशत महिला सरपंचों की मासिक आय 2,000-4,000 रुपये के मध्य है। कुल मिलाकर 75 प्रतिशत महिला सरपंचों की पारिवारिक आय 6,000 रुपये (मासिक) से कम है।

ग्राम पंचायत के सदस्यों ने विकास के लाभ प्राप्त करने के लिए अपने गांव में प्रौढ़ शिक्षा, बालिका शिक्षा और 18 से 35 वर्ष की आयु का कोई भी व्यक्ति निरक्षर न रहे, इस पर ध्यान दिया है। गांव में महिला बाल विकास द्वारा संचालित आंगनवाड़ी एवं पोषण आहार केन्द्र का सही तरीके से लोगों तक लाभ पहुंचाया जा रहा है। गांवों में अधिकांशत: सड़क निर्माण, गली मरम्मत, तालाब पचरीकरण, पुल निर्माण, इंदिरा आवास, पहुंच मार्ग, गली खड़ंजा निर्माण, पंचायत भवन, स्कूल भवन, प्राथमिक शाला का निर्माण कार्य संचालित किया गया है तथा इन ग्रामों में 50 हजार से 5 लाख रुपये की लागत तक के कार्य सम्पन्न हुए हैं।

इससे सबसे अधिक 70 से 100 व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ है। नियमित रूप से पंचायत में कार्य के मूल्यांकन के लिए बैठक आयोजित की जाती हैं। महिला समृद्धि योजना (90 प्रतिशत), प्रसूति लाभ (98 प्रतिशत), परिवार कल्याण (शत प्रतिशत), स्वास्थ्य योजना (शत प्रतिशत), साक्षरता/उत्तर साक्षरता (शत प्रतिशत), कुष्ठ निवारण (95 प्रतिशत), डायरिया (शत प्रतिशत), निर्धनों के लिए जीवन धारा (83 प्रतिशत), वृद्धों के लिए सहायता योजना (98 प्रतिशत), ट्रायसेम (98 प्रतिशत), आई.आर.डी.पी. (शत प्रतिशत), प्रधानमंत्री रोजगार योजना (47 प्रतिशत), बीज (97 प्रतिशत), खाद (97 प्रतिशत), उन्नत उपकरण (97 प्रतिशत), सिंचाई के लिए (90 प्रतिशत), धुआं रहित चूल्हा (17 प्रतिशत), शौचाल[य] (25 प्रतिशत), नाली (20 प्रतिशत) जैसे कार्यक्रम पंचायत के माध्यम [से] सरपंचों द्वारा क्रियान्वित किए गए हैं।

औसतन 97 प्रतिशत सरपंचों का मानना है कि गांव में आम नागरि[क] निर्माण कार्य, ग्राम विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं तथ[ा] सहयोग एवं श्रमदान प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

दुर्ग जिले के विकास खंड डौंडी, दुर्ग, साजा, बेरला, गुरूर, बालोद [में] पंचायती राज के प्रति सरपंच तथा पंच सचेत हैं और अपने कर्तव्यों क[ा] निर्वाह पूरी निष्ठा से कर रहे हैं। विकास में ग्रामीणों की भागीदारी [भी] अधिक पाई गई क्योंकि साक्षरता का प्रतिशत इन क्षेत्रों में अधिक है[।] विभिन्न सरकारी कार्यक्रम इन क्षेत्रों में क्रियान्वित हैं, परंतु अभी प्रत्य[क्ष] रूप से लाभ पिछड़े वर्गों तक परिलक्षित नहीं हो रहा है क्योंकि सभ[ी] योजनाएं अपने शुरुआती दौर में ही हैं। निर्माण कार्य तेजी से चल रहा [है] जिससे गांव के लोगों को रोजगार भी प्राप्त हो रहा है। गरीबी की रेखा [से] नीचे के लोगों के उत्थान के लिए किए गए कार्यक्रमों में सबसे मुख[्य] कार्यक्रम स्वास्थ्य जागरण है।

दुर्ग जिले में पंचायती राज और विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेजी [से] जन-जन तक पहुंच रही है। यह जागरूक सरपंचों के माध्यम से गांव [के] नागरिकों तक पहुंचाई जा रही है। यद्यपि कार्यक्रम का क्रियान्वयन अ[भी] पहले चरण में ही है।

प्रशासन, पंचायती राज तथा नागरिकों के बीच सही समन्वयन [के] कारण सरपंच अपने पथ को सुदृढ़ किए हुए हैं। अध्ययन में सरपं[चों] में तकनीकी एवं प्रशासनिक अनुभव के साथ ही साथ वित्त संस्थ[ा] का अभाव पाया गया है। अत: उनकी अपनी कार्यकुशलता बढ़ाने [के] लिए प्रशिक्षण प्रदान करने की दिशा में आवश्यक कदम उठाए जा[ने] चाहिए। (अध्ययन से संबंधित तालिकाएं अगले पृष्ठ पर देखें)

संदर्भ सूची

पुस्तकें

1. जैन सतीशचन्द्र, म.प्र. में नया पंचायत राज (1994), इंदौर, पृष्ठ 3 व 31, 32, 33
2. दत्त अनिता, पंच, सरपंच और ग्राम सचिव के प्रशिक्षण, (1995), यूनीसे[फ] भोपाल, पृष्ठ 31, 32, 33 व 34।

पत्रिकाएं

1. कुरुक्षेत्र, वर्ष 42, अंक 3, जनवरी 1997, पृष्ठ 18।

सरपंच की उम्र

पंच की उम्र	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
-25	1	3	1	3
-33	15	50	11	37
-41	10	33	8	26
से ऊपर	4	13	10	33
ा	30	99	30	99

सरपंचों की शिक्षा का स्तर

पंचों की शिक्षा	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
मिक	9	30	10	33
यमिक	6	20	4	13
तर माध्यमिक	6	20	10	33
तक	2	7	2	7
तकोत्तर	1	3	4	13
ाक्षर	4	13	—	—
ा	2	7	—	—
	30	100	30	100

सरपंच के मुख्य व्यवसाय

च का व्यवसाय	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
ा	14	47	25	71
ार	4	13	2	6
री	8	27	8	23
दूरी	4	13	—	—
	30	100	35	100

सरपंचों का आर्थिक स्तर (सम्पत्ति)

जमीन (खेत)	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
एकड़	5	27	5	17
एकड़	10	33	15	50
2 एकड़	10	33	9	30
से अधिक	2	7	1	3
	30	100	30	100

परिवार तथा सरपंचों की कुल आय

क आय	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
,000	20	33	20	31
0-4,000	15	25	10	15
0-6,000	10	17	25	38
0-8,000	5	8	2	3
0-10,000	4	7	5	8
00 से अधिक	5	8	3	4
	60	100	65	100

कार्य की लागत

लागत	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
50 हजार से 1 लाख तक	12	40	5	17
1 लाख से 2 लाख तक	16	53	7	23
2 लाख से 3 लाख तक	2	7	6	20
4 लाख से 5 लाख तक	—	—	12	40
कुल	30	100	30	100

सरपंच बनने के बाद कार्य

कार्य	महिला सरपंच	प्रतिशत	पुरुष सरपंच	प्रतिशत
विद्यालय मरम्मत—प्राथमिक उच्च माध्यमिक	6	20	4	13
विद्यालय भवन निर्माण (प्राथमिक)	4	13	4	13
सड़क/गली मरम्मत	7	23	8	27
सांस्कृतिक भवन/मानव भवन/ नवयुवक मंडल/सांस्कृतिक कला मंच/यात्री प्रतीक्षालय/ महिला मंडल	—	—	11	37
तालाब पचरीकरण	4	13	7	23
शौचालय/मूत्रालय नाली	4	13	—	—
सड़क निर्माण	1	3	6	20
पंचायत भवन	5	17	5	17
पुल निर्माण/पुलिया निर्माण पहुंच मार्ग/इंदिरा आवास पहुंच मार्ग	8	27	9	30
माध्यमिक विद्यालय निर्माण/ प्रयोगशाला	—	—	3	10
कुंआ मरम्मत/स्टाप डैम/ तालाब गहरीकरण/ कुंआ जगत	—	—	6	20
बोरिंग, नाली, नल निर्माण सोख टंकी, जल निर्माण, नहर मरम्मत, हैंड पंप निर्माण, हैंड पंप, नाली	—	—	7	23
कांजी हाऊस निर्माण	3	10	3	10
गली खरंजा निर्माण	7	23	6	20
अन्य	6	20	4	13
अपूर्ण	4	13	1	3

पंचायत में कार्यक्रम लागू

	महिला सरपंच					पुरुष सरपंच					कुल				
	योग	हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत	योग	हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत	योग	हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
महिला समृद्धि योजना	30	28	93	2	7	30	26	87	4	13	60	54	90	6	10
प्रसूति लाभ	30	30	100	—	—	30	29	97	1	3	60	59	98	1	2
परिवार कल्याण	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
स्वास्थ्य योजना	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
साक्षरता/उत्तर साक्षरता	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
कुष्ठ निवारण	30	30	100	—	—	30	27	91	3	9	60	57	95	3	5
डायरिया	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
निर्धनों के लिए	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
जीवन धारा	30	22	73	8	27	30	28	93	2	7	60	50	83	10	17
वृद्धों के लिए	30	29	97	1	3	30	30	100	—	—	60	59	98	1	2
ट्रायसेम	30	30	100	—	—	30	29	97	1	3	60	59	98	1	2
आई.आर.डी.पी.	30	30	100	—	—	30	30	100	—	—	60	60	100	—	—
प्रधानमंत्री रोजगार योजना	30	12	40	18	60	30	16	53	14	47	60	28	47	32	53
बीज	30	29	97	1	3	30	29	97	1	3	60	58	97	2	3
खाद	30	28	93	2	7	30	30	100	—	—	60	58	97	2	3
उन्नत उपकरण	30	29	97	1	3	30	29	97	1	3	60	58	97	2	3
सिंचाई के लिए	30	26	87	4	13	30	28	93	2	7	60	54	90	6	10
अन्य/धुंआ रहित चूल्हे	30	7	23	23	77	30	3	10	27	90	60	10	17	50	83
शौचालय	30	8	27	22	73	30	7	23	23	77	60	15	25	45	75
नाली	30	7	23	23	77	30	5	17	25	83	60	12	20	48	80

(पृष्ठ 29 का शेष) **पंचायती राज व्यवस्था : विकास के तरीके में बदलाव की जरूरत**

में रोड़ा अटकाते हैं, समाज में अभी भी हैं। इनकी वजह से संसाधनों से मिलने वाले लाभों का असमान वितरण होता है और ग्रामीण विकास संतुलित रूप से नहीं हो पाता। लोगों की पंचायती राज में भागीदारी से इन दोषों को दूर किया जा सकता है। विकास कार्यों में लोगों की भागीदारी को नीतिगत निर्णय माना गया। पंचायती राज व्यवस्था के जरिए विकेन्द्रीकरण इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना गया लेकिन दुर्भाग्य से व्यवहार में इससे नौकरशाही का ही विस्तार हुआ। ऐसा सोचा गया था कि पंचायती राज के जरिए विकेन्द्रीकरण स्व-शासन की प्रक्रिया होगा जिसमें परियोजनाओं को लागू करने के स्थान पर ही फैसले किए जाएंगे लेकिन नौकरशाही के तौर-तरीकों और उच्च वर्ग द्वारा आम लोगों को सत्ता में हिस्सेदार न बनने देने की प्रवृत्ति ने विकेन्द्रीकरण को निष्प्रभावी बना दिया है। उदाहरण के तौर पर हम योजना बनाने को ही लें तो पाएंगे कि वह अभी भी केन्द्रीकृत है। इस कारण आम ग्रामीण व्यक्ति की समझ से बाहर है। फिर तकनीकी विशेषज्ञों का दृष्टिकोण लचीला नहीं होता, बल्कि बहुत संकीर्ण होता है।

जहां तक योजना बनाने में जमीनी स्तर की भागीदारी का सवाल है, इसमें यह महत्वपूर्ण नहीं है कि योजनाकार व्यावसायिक दृष्टि से कितना योग्य है बल्कि महत्वपूर्ण बात यह है कि जो फैसले वह लेता है, वह कितने सही हैं और लोगों को कितने स्वीकार्य हैं। संक्षेप में असली समस्या एक-दूसरे को समझने की है। नौकरशाही को लचीला दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और लोगों को लाभ पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिए। उसे बदलाव में अड़चन नहीं डालनी चाहिए। पंचायती राज व्यवस्था से विकास का नया तरीका यही हो सकता है। ❑

अनुवाद : बलदेव सिंह मदान

संदर्भ ग्रंथ

1. असलम, एम; *डीसेन्टरलाइजेशन एंड डेवलपमेंट एफर्ट;* द हिन्दी, 24 मई 1994।
2. बोहरा, ओ.पी.; *फाइनेन्शियल एसाइंमेंट्स टू पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स;* कुरुक्षेत्र, खंड XLIV, अंक 7, अप्रैल 1996।
3. *द कन्स्टीट्यूशन (सेवेन्टी-थर्ड) एमेन्डमेंट एक्ट 1992;* ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार 1993।
4. *भारत में पंचायती राज संस्थाएं;* ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली; नवम्बर 1991।
5. औम्मन; *पंचायत फाइनेन्स एंड इश्यूज रिलेटिंग टू इंटर-गवर्नमेंटल ट्रांसफर्स;* इन पंचायत्स एंड देयर फाइनेन्सस, इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली 1995।
6. *पीपल्स पार्टीसिपेशन इन रूरल डेवलपमेंट;* दक्षिण और दक्षिण-पश्चिमी एशियाई देश; सी.आर.डी.ए.पी. ढाका पर एक विहंगावलोकन, 1994।
7. *पोपुलर पार्टीसिपेशन इन डीसिजन मेकिंग फार डेवलपमेंट;* संयुक्त राष्ट्र संघ, न्यूयार्क 1973।

प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए उपयोगी पत्रिका

योजना

- आर्थिक एवं सामाजिक विषयों की मासिक पत्रिका

योजना में आप पाएंगे :

- अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर ज्ञानवर्धक सामग्री विकास तथा योजना प्रक्रिया का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण
- पर्यावरण, साक्षरता, विज्ञान एवं टेक्नोलौजी और पर्यटन जैसे आर्थिक-सामाजिक विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखित सारगर्भित लेख
- विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी

पत्रिका आज ही खरीदिए अथवा नियमित ग्राहक बनिए

योजना की विषय सामग्री का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले युवाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है जो उनकी सफलता में सहायक हो सकती है।

(*योजना* अंग्रेजी, उर्दू, असमिया, बंगला, गुजराती, कन्नड, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु और तमिल में भी निकलती है)

मूल्य : एक प्रति 5/- रु.

चंदे की दरें : ☐ एक वर्ष : 50 रु. ☐ दो वर्ष : 95 रु. ☐ तीन वर्ष : 135 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर निम्न पते पर भेजें :

सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार)
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066
दूरभाष : 6105590

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 ☐ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 ☐ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 ☐ 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ☐ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009 ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 ☐ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034

विक्रय केंद्र ● पत्र सूचना कार्यालय

☐ सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) ☐ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 ☐ के-21, नन्द निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302001

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और महिलाओं का सशक्तिकरण

डा. यतीन्द्र सिंह सिसोदिया *

पंचायती राज व्यवस्था द्वारा सामाजिक परिवर्तन आना एक अवश्यंभावी कल्पना है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में कई प्रयास किए गए, जिनमें 73वां संविधान संशोधन अधिनियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण और गंभीर प्रयास है। इस संशोधित अधिनियम के माध्यम से जहां एक ओर इन संस्थाओं को वैधानिक बनाया गया, वहीं दूसरी ओर ऐसे समुचित उपबंध किए गए जिससे यह स्वशासन की स्वतंत्र इकाई बन कर सरकार के तीसरे स्तर के रूप में कार्य कर सकें।

महिलाएं समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं लेकिन यदि उनकी अब तक की राजनीतिक सहभागिता के प्रतिशत को देखा जाए तो वह लगभग नगण्य ही है। महिलाओं के राजनीति में सक्रिय न होने के कई मूलभूत कारण हैं। गांवों में राजनीतिक सहभागिता ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था के कारण ही संभव नहीं हो पाई है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में किए गए प्रावधानों के पश्चात पंचायती राज संस्थाओं में कुल स्थानों के एक-तिहाई स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित किए गए हैं। आरक्षण के इस प्रावधान में सामान्य वर्ग की महिलाओं के साथ ही अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में एक-तिहाई स्थान आरक्षित किए गए हैं।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के पश्चात अधिकांश राज्यों ने इसके अनुरूप अपने-अपने राज्य में पंचायती राज कानून बनाए और उन्हीं के तहत चुनाव भी कराए। नवीन व्यवस्था के अंतर्गत गठित पंचायतों को कई राज्यों में तीन-चार वर्ष हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रासंगिक है कि महिला जनप्रतिनिधियों के संदर्भों में अब तक के अनुभवों का विश्लेषण किया जाए।

*संकाय सदस्य, मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, महाश्वेता नगर, उज्जैन, म.प्र.

निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत गठित पंचायतों के महिला प्रतिनिधित्व को देखा जाए तो कुछ तथ्य उभर कर सामने आते हैं। विशेषत: जो महिला प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आई हैं, उनमें बड़ी संख्या में महिलाएं परंपरागत ग्रामीण राजनीतिक लोगों से जुड़ी हुई हैं। आरक्षण के प्रावधान के कारण गांवों के परंपरागत राजनीतिक वर्चस्व वाले व्यक्तियों ने अपने परिवार की महिलाओं को अथवा अपने से संबद्ध परिवारों की महिलाओं को चुनावों में उतारा और उन्हें अपेक्षित जीत भी हासिल हुई है। अभी तक महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है, जिसके कारण प्रतिस्पर्द्धा का अभाव भी रहा। इसके अलावा एक और उल्लेखनीय तथ्य उभर कर सामने आता है कि विकास खंड तथा जिला स्तर पर जो महिला प्रतिनिधित्व आया है, उसमें एक प्रतिशत कस्बाई अथवा शहरी पृष्ठभूमि का है।

महिला जनप्रतिनिधियों की कार्य प्रणाली

नवीन पंचायती राज व्यवस्था में पंचायतों को अधिकार-सम्पन्न बनाया गया है जिससे जनप्रतिनिधियों की भूमिका बहुत बढ़ गई है। इस परिप्रेक्ष्य में महिला प्रतिनिधियों की सामान्य पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने पर यह स्पष्ट होता है कि इस तरह के कार्य करने के अनुभव का महिला प्रतिनिधियों में नितांत अभाव रहा है जिससे उन्हें कानूनी पेचीदगियों तथा उस वातावरण में कार्य करना कई बार कठिन प्रतीत होता है। यद्यपि प्रारंभिक दौर में महिला जनप्रतिनिधियों को कार्य करने में कई व्यावहारिक कठिनाइयां आई हैं लेकिन समय के साथ अब स्थिति में बदलाव आ रहा है। कई महिला जनप्रतिनिधि अब ग्रामसभा की बैठक से लेकर पंचायत की बैठकों, अधिनस्थ अभिकरणों तथा अन्य प्रशासकीय बैठकों में प्रखरता से अपनी उपस्थिति तथा कार्यक्षमता का परिचय दे रही हैं। आज भी इनका एक

बहुत बड़ा भाग सक्षमतापूर्वक कार्य नहीं कर रहा है जिसमें अशिक्षा, कमजोर सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और अंतर्मुखी व्यक्तित्व प्रमुख कारण हैं।

महिला जनप्रतिनिधियों के स्वतंत्र कार्य निर्वहन में हस्तक्षेप

प्रारंभिक दौर में जो महिला प्रतिनिधि निर्वाचित हुईं, उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि या तो राजनीतिक थी अथवा वे किसी-न-किसी राजनीतिक समूह से जुड़ी हुई थीं, जिससे उनके कार्यों में सम्बद्ध राजनीतिक समूह के प्रभावशाली व्यक्तियों अथवा परिवार के पुरुषों का सीधा हस्तक्षेप रहा है। इसी कारण कई बार यह आरोप भी लगाया जाता है कि ऐसी राजनीतिक भर्ती का क्या औचित्य है? निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों के परिवार के सदस्य यथा—पति, भाई, पिता—उस पद पर निर्वाचित महिला से ज्यादा अपना अधिकार समझते रहे हैं। पुरुषों की ऐसी मानसिकता ने कई जगह पारिवारिक कलह को भी जन्म दिया। यद्यपि पंचायतों के गठन के दौर में तथा वर्तमान स्थिति में समय के साथ कुछ परिवर्तन हुआ है फिर भी, हस्तक्षेप की स्थितियां बनी हुई हैं जिसके कारण महिला जनप्रतिनिधि सम्बद्ध पुरुष वर्ग द्वारा उत्पन्न व्यवधान को आज भी भोग रही हैं। इसके अलावा हमारी सामाजिक व्यवस्था भी इसका बड़ा कारण है। जिस सामाजिक व्यवस्था में महिलाएं, विशेष रूप से ग्रामीण महिलाएं, किसी भी तरह के निर्णय लेने की प्रक्रिया में संलग्न नहीं रहीं, वहां महिलाओं से संपूर्ण कार्य के स्वतंत्र निर्वहन की अपेक्षा बेमानी लगती है। यद्यपि ऐसे कई उदाहरण सामने हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि कई जगह महिलाएं संपूर्ण सक्षमता से कार्य कर रही हैं।

प्रशासकीय वर्ग से सम्बद्धता

महिला प्रतिनिधियों के संदर्भ में यह स्वीकृत सत्य है कि ऐसे कार्यों के अनुभव का अभाव एवं व्यावहारिक कठिनाइयों से प्रशासकीय वर्ग से संबंधों में विरोधाभास की स्थितियां उत्पन्न होती रही हैं। ऐसी स्थितियों में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधि किसी पर भी निर्भर न रहते हुए स्वयं समस्त कानूनी प्रावधानों तथा कार्य प्रणालियों को समझें जिससे प्रशासकीय वर्ग का सहयोग भी उनके प्रति बढ़ेगा। विशेष रूप से महिला जनप्रतिनिधियों के कार्य संचालन में अन्य व्यक्तियों के अनावश्यक हस्तक्षेप से भी प्रशासकीय वर्ग का अपेक्षित सहयोग उन्हें नहीं मिल पाता है। साथ ही इससे कटुता भी बढ़ती है। अतएव ऐसी स्थितियों से बचने के प्रयास किए जाने चाहिए।

सदियों से भारत में महिलाओं का सार्वजनिक रूप में सामाजिक अथवा राजनीतिक दायित्वों से कोई सरोकार नहीं रहा जिसके कारण समाज का यह वर्ग ऐसी जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु मानसिक रूप से तैयार नहीं था। यहां यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि पंचायतों के संदर्भ में कई पुरुष जनप्रतिनिधियों की समस्याएं भी कमोबेश महिलाओं के समान ही हैं। जब भी किसी नवीन व्यवस्था का उद्‌भव होता है तो स्वाभाविक रूप से प्रारंभिक दौर में कई व्यावहारिक दिक्कतें तथा चुनौतियां सामने आती हैं। ऐसे में किसी व्यवस्था के प्रति बहुत जल्दी कोई भी भविष्यवाणी करना निश्चित रूप से अप्रासंगिक है।

अंततः तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद यह आशावादी दृष्टिकोण ही उचित है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से सरकार का जो तीसरा स्तर निर्मित हुआ है, उसमें समाज के सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। इसी व्यवस्था को नीति-निर्माण से लेकर नीति क्रियान्वयन तक की महत्ती जिम्मेदारी सौंपी गई है। जैसे-जैसे महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का स्तर बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे सामने आ रही व्यावहारिक कठिनाइयां कम होती चली जाएंगी। यही नहीं, हमारे विशाल ग्रामीण समाज में जिसकी राजनीतिक सहभागिता तथा व्यवस्था के प्रति सजगता का स्तर सामान्य से कम रहा है, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस सशक्त प्रक्रिया से जबर्दस्त बदलाव आएगा और उसमें विशेष रूप से महिला वर्ग की स्थिति में आवश्यक तथा अपेक्षित सुधार होगा। महिला सशक्तिकरण का एक और संभावित पहलू ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में तेजी आना भी है क्योंकि ग्रामीण विकास के मार्ग की प्रमुख बाधाओं से महिला वर्ग का अपेक्षाकृत सीधा सरोकार रहा है। अतः उनके उन्मूलन को लेकर भी महिला जनप्रतिनिधित्व ही ज्यादा उत्साही होना चाहिए। महिला सशक्तिकरण से विकास की प्रक्रिया को गति मिलेगी और राजनीतिक तथा सामाजिक सजगता के स्तर में वृद्धि होगी जिससे लोकतंत्र सही मायने में अंतिम व्यक्ति तक पहुंचेगा। जब वास्तविक विकास की प्रक्रिया उस अंतिम व्यक्ति से प्रारंभ होगी, तो निश्चित रूप से वह दिन दूर नहीं जब हम लक्ष्यों से कहीं आगे होंगे। ❑

(पृष्ठ 36 का शेष) **महिला और पंचायत : पांच वर्ष का आकलन**

फूलों के बाग लगाए हैं। महिलाओं तथा पुरुषों को स्वरोजगार के विभिन्न अवसर प्रदान किए। प्राथमिक तथा सेकेंडरी स्कूलों की हालत में सुधार किया है। विद्यार्थियों को हजारों किताबें मुफ्त में वितरित कराईं। सैंकड़ों बच्चे जिन्होंने स्कूल जाना छोड़ दिया था, फिर प्रवेश ले लिया है। लोगों को जमीन के संयुक्त पट्टे वितरित किए। ग्राम पंचायत की नियमित रूप से ग्राम सभा की बैठकें हुईं तथा उनकी कार्यवाही भी प्रकाशित हुई। पंचायत के आय-व्यय के ब्यौरे तथा भावी कार्यक्रमों पर खुल कर चर्चा हुई, जो अनुकरणीय है।

यह प्रभाव है—73वें संविधान संशोधन का तथा अन्य राज्यों में भी हजारों जगह ऐसा काम हो रहा होगा। केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार की जिम्मेदारी है कि वे संविधान की धारा 243-जी के अनुसार पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्था का दर्जा देने के लिए कदम उठाएं। पंचायतों को कार्यात्मक, वित्तीय तथा प्रशासनिक स्वायत्तता देने के प्रयास किए जाएं तथा साथ ही साथ जन-प्रतिनिधियों को, विशेष रूप से महिला सदस्यों को, प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से विकेंद्रीकरण, शासन, प्रशासन, योजना तथा विकास का ज्ञान कराया जाए ताकि महिलाओं की झिझक दूर हो और वे देश को सशक्त बनाने के लिए जमीनी स्तर से काम कर सकें, जिसकी इस समय आवश्यकता है। ❑

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को स्थायी और सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से पंचायतों को सशक्त बनाने पर विशेष बल दिया गया। क्षेत्रीय विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर प्रारंभ में ग्राम पंचायतों के लिए कोई संवैधानिक प्रारूप देने पर सहमति नहीं हो पाई। फिर भी, यह पंचायतों के महत्व के प्रति सहमति ही थी कि संविधान की धारा-40 में वर्णित नीति-निर्देशक तत्वों में कहा गया कि ग्रामीण स्तर पर पंचायतों के गठन को सुनिश्चित करने हेतु सरकार आवश्यक कदम उठाएगी तथा सरकार का यह दायित्व होगा कि उन्हें वह सारी शक्तियां तथा सत्ता प्रदान करे जिससे वे स्वायत्तशासी निकाय के रूप में कार्य कर सकें। इसके बाद 1958 में प्रस्तुत की गई बलवंतराय मेहता रिपोर्ट में की गई संस्तुतियों के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के गठन की प्रक्रिया अभूतपूर्व उत्साह के साथ शुरू हुई। उस समय आशा की गई थी कि पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र को ग्रामीण जनता के दरवाजे तक पहुंचा सकेगी, ग्रामीण जनता के भविष्य से जुड़े कार्यक्रमों तथा योजनाओं के लिए नीति-निर्धारण तथा क्रियान्वयन की क्रम में अन्य अवयवों के समान मानव एक अवयव मात्र नहीं है, बल्कि वह समाज के स्वरूप का निर्धारक कारक है। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं का मूल उद्देश्य मानव संसाधन का विकास करना होना चाहिए।

लगभग एक दशक के बाद डी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने 1985 में अपनी रिपोर्ट में पंचायतों के कमजोर होने के दो प्रमुख कारण बताए—वित्तीय संसाधनों की कमी तथा नियमित चुनावों का न होना। समिति ने खेद प्रकट किया कि विभिन्न प्रांतों में सूखा, बाढ़, जनगणना, आम चुनाव, परिसीमन, आरक्षण आदि अनेक बहानों से पंचायतों के चुनाव टाले जाते रहे। राव समिति ने छठी पंचवर्षीय योजना का यह उद्देश्य स्वीकार किया कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को दृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य की सफलता के लिए पंचायती राज व्यवस्था के विभिन्न स्तरों को ऐसे कार्य सौंपे जाने जरूरी हैं जिनकी योजना बनाने तथा क्रियान्वयन में वे सक्षम हों। जिला तथा ब्लाक स्तर की योजनाओं के निर्माण और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों की योजना

पंचायती राज का विकास और जन-सहभागिता का प्रश्न

डा. राजमणि त्रिपाठी*
डा. सुनीत सिंह*

प्रक्रिया में जन-सहभागिता को प्रोत्साहित कर सकेगी, प्रशासन को स्थानीय लोकप्रिय सत्ता के अधीन नियंत्रित कर सकेगी तथा आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान कर सकेगी। बलवंतराय मेहता रिपोर्ट (1957) में वर्णित संस्तुतियों को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रांतों ने पंचायती राज व्यवस्था लागू की। प्रांतों में व्याप्त विभिन्नताओं के कारण क्रियान्वयन के स्तर पर स्वरूप में भिन्नता होना स्वाभाविक था। कुछ में सफलता मिली, तो कुछ में प्रगति उत्साहजनक नहीं रही। 1977 में पुन: पंचायतों को राजनैतिक स्तर पर महिमामंडित किया गया तथा उन्हें सक्रिय बनाने के उद्देश्य से अशोक मेहता समिति गठित की गई जिसने 1978 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज प्रणाली को अपेक्षित सफलता न मिलने की स्थिति को स्वीकार किया तथा इसके लिए प्रशासनिक उदासीनता, राजनैतिक प्रतिबद्धता में गिरावट तथा अवधारणा के स्तर पर स्पष्टता के अभाव को उत्तरदायी बताया। अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए चल रही प्रक्रिया के साथ समग्र रूप से जोड़ने की संस्तुति की। मानव संसाधन को वित्तीय संसाधन की तुलना में अधिक महत्व प्रदान करते हुए समिति ने कहा कि विकास के तैयार करने तथा क्रियान्वयन की प्रक्रिया में पंचायतों को जोड़े जाने के उद्देश्य में मिली आंशिक सफलता की सराहना करते हुए समिति ने स्वीकार किया कि जहां भी पंचायतों को जोड़ा गया, वहां लाभार्थियों की सही पहचान तथा योजनाओं के निर्माण में अपेक्षाकृत बेहतर परिणाम प्राप्त हुए। राव समिति ने सिफारिश की कि पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से सौंपे गए कार्यों और दायित्वों के सुचारू रूप से निर्वाह करने के लिए पंचायतों को आवश्यक संसाधन और अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए।

इसी क्रम में पंचायतों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करने के उद्देश्य से सन् 1988 में श्री एल.एम. सिंघवी के नेतृत्व में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं की गिरावट को स्वीकारते हुए, इसके लिए अवधारणा की दृष्टि से अस्पष्टता, राजनैतिक प्रतिबद्धता में कमी, राष्ट्रीय प्राथमिकता को स्वीकार न करने, शोध, मूल्यांकन एवं सुधारों के लिए प्रयास का निरंतर अभाव आदि कारणों को उत्तरदायी बताया। समिति ने पंचायतों को प्रभावशाली बनाने के लिए सुझाव दिया कि पंचायती राज को ग्राम स्वराज की अवधारणा से प्रेरणा लेनी चाहिए। स्वशासन की आधारभूत इकाई के रूप में स्वीकारते

*रिसर्च एशोसिएट, गोविन्द बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद

हुए समिति ने ग्राम सभाओं को लोकतांत्रिक देश के गणतंत्रात्मक आधार के रूप में प्रस्तुत किया। समिति ने सुझाव दिया कि स्थानीय स्वशासन को संविधान में संशोधन के जरिए संवैधानिक मान्यता, सुरक्षा तथा संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। साथ ही स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक रूप से राजसत्ता का तृतीय स्तर घोषित किया जाना चाहिए। पंचायती राज की मान्यता का हरण न हो सके, इसके लिए संविधान में पृथक अध्याय जोड़ा जाना चाहिए। समिति ने पंचायतों को प्रभावशाली बनाने के लिए मतदाताओं, निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों, प्रशासनिक अधिकारियों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने का भी सुझाव दिया।

आजादी के बाद नीति-निर्माताओं में निर्विरोध रूप से यह सहमति थी कि भारत जैसा देश, जिसकी तीन-चौथाई से अधिक जनसंख्या गांवों में बसती है, का विकास ग्रामीण जनसंख्या के विकास को अनदेखा करके नहीं किया जा सकता। साथ ही, इस बात पर भी सहमति व्यक्त की गई कि भारत जैसे विशाल तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं वाले देश में केन्द्रीकृत प्रशासन के द्वारा विकास की मुख्यधारा में सभी को जोड़ना अत्यंत कठिन है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जाए। ग्राम स्वराज की इस परिकल्पना में राज्य का अंत नहीं, बल्कि राज्य का विकेन्द्रीकरण होना था। यह कहा गया कि सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता बल्कि इसे प्रत्येक गांव के लोगों के जरिए नीचे से चलाना होगा। परंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में राज सत्ता के विकेन्द्रीकरण की जो प्रक्रिया व्यवहार में शुरू हुई, वह देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के आधार को व्यापक बनाने के लिए सहभागी लोकतंत्र की आधारभूमि तैयार करने जैसे उद्देश्य से प्रेरित न होकर, मूलत: ऊपर से लागू किए जाने वाले विकास कार्यक्रमों में सार्वजनिक सहयोग सुनिश्चित करने की नीयत से चलाई गई। यह सीमित उद्देश्य पंचायती राज के दार्शनिक मूलाधारों से मेल नहीं खाता था। केन्द्र या राज्य सरकारों ने वर्चस्व तथा श्रेष्ठता की स्थिति में हस्तक्षेप न करने तथा नीचे की संस्थाओं में हस्तक्षेप बनाए रखने के उद्देश्य से विकेन्द्रीकरण को कभी भी पूर्णता के साथ लागू नहीं किया।

वस्तुत: सीमित अर्थों में पंचायती राज के लिए प्रयास तात्कालिक राजनैतिक लोकप्रियता की दृष्टि से काफी सुविधाजनक था क्योंकि पंचायतों के लिए चुनाव अधिकार तथा प्रतिनिधित्व, योजना से जोड़े जाने, देख-रेख का दायित्व, वित्तीय तथा अन्य संसाधनों आदि की घोषणाओं को राष्ट्रव्यापी अथवा राज्य स्तरीय प्रचार मिलता था। इन घोषणाओं के मध्य से पंचायतों को प्रभावशाली बनाकर सत्तासीन राजनैतिक दल आगामी चुनावों के लिए अपने आधार का विस्तार करते रहे। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन सबके बीच पंचायती राज व्यवस्था दिनोंदिन मजबूत भी होती रही और अंतत: 73वें संविधान संशोधन के जरिए उसे संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त हो गई। इस प्रकार जहां तक राजसत्ता के तीसरे स्तर के रूप में मान्यता प्राप्त होने का प्रश्न है, विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया बलवती होती रही। यदि इस दिशा में आजादी के बाद के वर्षों में पंचायती राज के क्षेत्र में प्रगति के आधार पर काल-विभाजन करने का प्रयास करें, तो हम इसे छह भागों में बांट सकते हैं—(1) उत्साह का काल 1957-64, (2) ठहराव काल 1965-69, (3) गिरावट काल 1970-77, (4) पुनर्जीवन काल 1978-79, (5) पुन: गिरावट का काल 1980-89, (6) नवीन उत्साह का काल 1990 से आज तक। 1992 में 73वां संविधान संशोधन पारित होने के बाद पंचायती राज व्यवस्था के पक्ष में एक नया दृष्टिकोण दिखाई दिया। संविधान संशोधन के अनुरूप सभी राज्यों में 23 अप्रैल 1994 तक राज्य स्तरीय पंचायत कानूनों में संशोधन भी कर लिए गए। अधिकांश राज्यों में चुनाव हो गए और नई पंचायतें गठित कर दी गईं।

यद्यपि प्रशासनिक कार्यों तथा विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग की दृष्टि से पंचायतों की महत्ता स्वीकार की गई है तथा उस दिशा में भिन्न-भिन्न स्तरों पर पंचायतें नि:संदेह सक्रिय भी हुईं। परंतु देश में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना के आधारभूत दार्शनिक पक्ष को लगातार अनदेखा किया जाता रहा। पंचायती राज के विकास का महत्वपूर्ण दार्शनिक पक्ष अधिकाधिक जन-सहभागिता था, जिस पर आजादी से पूर्व तथा बाद के वर्षों में भी व्यापक चर्चा होती रही। यह सर्वमान्य है कि लोकतंत्र की मजबूती अधिकतम जन-सहभागिता द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। पंचायतों के माध्यम से गांवों में जन-सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए सिद्धांत रूप में प्रारंभ से ही राजनैतिक दलों में आम सहमति थी। परंतु आज तक सहभागिता प्राप्त करने की दिशा में ठोस प्रयास नहीं हो सके। पंचायत चुनावों के समय मतदाता के रूप में भागीदारी को ही जन-सहभागिता का मापदंड मानकर हम संतुष्ट होते रहे। यह कहना गलत न होगा कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संदर्भ में जन-सहभागिता को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य नीति-निर्माताओं के लिए मृग-मरीचिका जैसा हो गया है। बलवंत राय मेहता कमेटी के गठन से लेकर 73वां संविधान संशोधन लागू होने तक योजनाबद्ध विकास के लगभग चार दशक बीत जाने के बाद, अभी भी जन-सहभागिता प्रोत्साहन नीति-निर्माताओं के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि गांवों में जन-सहभागिता पंचायतों के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए कार्य योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन का दायित्व पंचायतों को सौंपे जाने की विशेष व्यवस्था की गई है। परंतु कार्य योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन का अधिकार मिलने से पंचायतें ग्रामीण स्तर पर जन-सहभागिता प्रोत्साहित कर ही लेंगी, इसके बारे में सहज रूप में आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता क्योंकि सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तियों का सहभागी होना सामुदायिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर मूल्यगत नैतिक भावना से जुड़ा प्रश्न है। ऐसे नैतिक मूल्यों के विकास के लिए अनुकूल सामाजिक-

पंचायतों के माध्यम से गांवों में जन-सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए सिद्धांत रूप में प्रारंभ से ही राजनैतिक दलों में आम सहमति थी। परंतु आज तक सहभागिता प्राप्त करने की दिशा में ठोस प्रयास नहीं हो सके। पंचायत चुनावों के समय मतदाता के रूप में भागीदारी को ही जन-सहभागिता का मापदंड मानकर हम संतुष्ट होते रहे। यह कहना गलत न होगा कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संदर्भ में जन-सहभागिता को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य नीति-निर्माताओं के लिए मृग-मरीचिका जैसा हो गया है।

सांस्कृतिक परिवेश एक पूर्व शर्त है। पंचायतें कार्य-योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन के माध्यम से जिस भौतिक संरचना का विस्तार करेंगी, वह उक्त परिवेश के विकास में उत्प्रेरक की भूमिका तो निभा सकती हैं परंतु मूल्यों तथा अभिवृत्तियों में रूपांतरण हेतु आधारभूमि का निर्माण नहीं कर सकतीं। जन-सहभागिता प्रोत्साहन हेतु वांछित मूल्यों का निर्माण, जीवन-शैली से जुड़ा विषय है जो दीर्घकाल तक चलने वाली अनवरत प्रक्रिया का प्रतिफल है।

नीतिगत दृष्टि से प्राथमिक तथा महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि जन-सहभागिता को प्रेरित करने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को क्या हम रेखांकित कर सकते हैं? यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि तात्कालिक लाभ की दृष्टि से अवधारणा के स्तर पर सामान्यीकरण के साथ किए जाने वाले प्रयास, वांछित परिणाम दे पाने में सफल नहीं हो सकते। हाल के वर्षों में विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत गांवों में स्थापित की गई परिसम्पत्तियों या स्थायी सुरक्षा की दृष्टि से जन-सहभागिता की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जा रहा है। ग्रामीण विकास के अंतर्गत चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करते हुए अनेक सार्वजनिक परिसंपत्तियों का निर्माण ग्रामीण स्तर पर किया जा चुका है। नई परिसंपत्तियों की स्थापना की मांग के सतत दबाव के कारण, स्थापित की जा चुकी परिसंपत्तियों के रख-रखाव का दायित्व प्रशासनिक विभागों द्वारा पूरा नहीं हो पा रहा है और न ही इन कार्यों के लिए उनके पास कोष है। परिणामस्वरूप जहां एक ओर नई परिसंपत्तियों का निर्माण हो रहा है, वहीं दूसरी ओर रख-रखाव की समुचित व्यवस्था के अभाव के कारण इनका समय से पूर्व ह्रास भी होता जा रहा है। कहा जा रहा है कि सार्वजनिक परिसंपत्तियों को निर्माण के बाद यदि समुदाय को सौंप दिया जाए तो उनके अंदर स्वामित्व का भाव पैदा होगा और वे उसके बेहतर रख-रखाव तथा अनुकूलतम उपयोग के लिए स्वत: प्रेरित होंगे। यह निर्विवाद है कि रख-रखाव के अभाव में परिसंपत्तियों का ह्रास एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। परंतु स्वामित्व के हस्तांतरण मात्र से क्या पंचायतें जन-सहभागिता को प्रोत्साहित करने में सफल हो पाएंगी, यह आधारभूत विचारणीय प्रश्न है। रख-रखाव जन-सहभागिता का परिणाम है, यह जन-सहभागिता प्रेरित करने का आधार नहीं हो सकता। इसीलिए जिन गांवों में जन-सहभागिता की संस्कृति विकसित नहीं हुई होगी, वहां खतरा यह है कि परिसंपत्तियों के हस्तांतरण के बाद प्रशासनिक विभागों के स्थान पर पंचायतें रख-रखाव का कार्य करने वाली एक सरकारी संस्था के रूप में विकसित हो जाएंगी। ऐसे में जन-सहभागिता का लक्ष्य पुन: अप्राप्य रह जाएगा।

अधिकाधिक जन-सहभागिता के लिए वांछित सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों की चर्चा गांधी जी ने अपने पंचायती राज तथा ग्राम स्वराज संबंधी विचारों के संदर्भ में सर्वोत्तम रूप से की है। यद्यपि गांधी जी ने जन-सहभागिता शब्द का प्रयोग नहीं किया क्योंकि गांधी जी के ग्राम सुधार की प्रक्रिया में जनता की सक्रिय तथा अर्थपूर्ण भागीदारी एक अंतर्निहित तथा अविभाज्य अवयव के रूप में सम्मिलित है। गांधी जी के विचार व्यावहारिकता की दृष्टि से भले ही खरे प्रतीत न होते हों, परंतु जैसा कि गांधी जी ने स्वयं कहा कि "इस तसवीर को पूरी तरह बनाना या पाना संभव नहीं है, तो भी इस तसवीर को पाना या इस तक पहुंचना हिन्दुस्तान की जिंदगी का मकसद होना चाहिए। जिस चीज को हम चाहते हैं, उसकी सही-सही तसवीर हमारे सामने होनी चाहिए। तभी हम उससे मिलती-जुलती चीज पाने की आशा रख सकते हैं।" यदि शुरू से ही हमने गांधी जी के विचारों को मानक मान लिया होता तो वे हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में कार्य करते रहते। पंचायती राज व्यवस्था के विकास के संदर्भ में अवधारणात्मक अस्पष्टता को एक प्रमुख बाधा के रूप में बार-बार दोहराया जाना इसी कमी को इंगित करता है।

जन-सहभागिता के लक्ष्य को हासिल करने के लिए ग्रामीणों का गुणात्मक विकास एक पूर्व शर्त है। ग्रामीण विकास के प्रयास परिणामोन्मुखी तभी हो पाएंगे, जब कार्यक्रमों में ग्रामीण व्यक्ति हों। जहां तक भौतिक संरचना से जुड़ी आधारभूत सुविधाओं के विस्तार का प्रश्न है, गांवों के विकास के लिए उनकी उपलब्धता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। परंतु मानव संसाधन में गुणात्मक सुधार को अनदेखा करके यदि हम आधारभूत सुविधाओं में निरंतर विस्तार करते जाएंगे, तो स्थापित संरचना का वांछित दिशा में अनुकूलतम उपयोग न हो पाने की पर्याप्त संभावना रहेगी ही। मानव संसाधन के विकास को पंचायती राज संस्थाओं के प्रमुख दायित्व के रूप में चिन्हित किया जाता रहा है। यहां पुन: गांधी जी के विचारों को उद्धृत करना समीचीन होगा। वह कल्पना करते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था के आधार पर निर्मित समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उनका फैलाव एक के ऊपर एक ढंग का नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिंदगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाए पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिंदगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्य बिन्दु होगा। इस प्रकार वास्तविक अर्थों में गांवों का विकास, गांवों में रहने वालों के जीवन को सुखमय बनाने से है जिसके लिए भौतिक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग की दृष्टि से ग्रामीणों की जीवन-शैली से जुड़े विभिन्न पक्षों में गुणात्मक सुधार के लिए प्रयास करते रहना जरूरी है। गुणात्मक संवर्द्धन की इस प्रक्रिया के तीन प्रमुख आयाम बताए जा सकते हैं।

रचनात्मक एवं सृजनशीलता जन-सहभागिता के लिए व्यक्ति को प्रेरित करने वाले महत्वपूर्ण नैतिक मूल्यों में से एक है। रचनात्मकता का गुण व्यक्ति को सामुदायिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप के लिए नैतिक बल प्रदान करता है। इस दिशा में ग्राम पंचायतें उपयोगी भूमिका निभा सकती हैं। गांधी जी की दृष्टि में पंचायती राज तथा ग्रामीण रचनात्मकता लगभग पर्याय से थे। हर एक गांव में लोकतंत्र या पंचायती राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी करनी होंगी ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। रचनात्मकता व्यक्ति को संपूर्णता प्रदान करती है, व्यक्ति के अंदर संगठनात्मक प्रबंधकीय गुणों का विकास होता है। गांधी जी ने रचनात्मकता को कला और कारीगरी के संदर्भ में परिभाषित करते हुए कहा कि देहात वालों को वह कला और कारीगरी आनी चाहिए जिससे उनके द्वारा बनाई गई चीजों की कीमत आंकी जा

सके। जब गांव वालों का पूरा-पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा संतुष्ट करने वाली कला-कारीगरी के धनी स्त्री-पुरुषों की कमी नहीं होगी। गांव में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, शिल्पी होंगे, भाषा के पंडित होंगे और शोध करने वाले लोग भी होंगे। अर्थात जिंदगी की ऐसी कोई चीज नहीं होगी, जो गांव में न मिले। इस प्रकार गांधी दर्शन में रचनात्मकता या सृजनशीलता गांव की समग्र जीवन-शैली को प्रभावित करती है और सहभागिता एक स्वाभाविक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में विकसित होती जाती है।

जन-सहभागिता को प्रभावित करने वाला दूसरा आयाम—सद्भाव तथा सहकार की भावना के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। सद्भाव तथा सहकार की भावना किसी भी समाज में स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं की जा सकती। यह भावना उसी व्यक्ति के अंदर विकसित हो सकेगी, जो आत्मबली तथा आत्मनिर्भर होगा। विगत वर्षों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने निर्भरता की जिस संस्कृति का विस्तार किया है, उससे निष्क्रियता की प्रवृत्ति बढ़ी है। यही कारण है कि उन्हीं गांवों में, जहां सहकारिता सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन-शैली का अभिन्न अंग होती थी, वहां लोग 'स्व' तक सीमित होते जा रहे हैं। 'स्व' की भावना अपने-आप में प्रमाणित करती है कि लोग सीमितता के भय से प्रभावित हैं। ऐसे समाज में प्रतिस्पर्द्धा के बजाय हड़पने की संस्कृति विकसित होती है। आज हमारे गांवों में यह पद्धति सहज रूप से देखी जा सकती है। ऐसे सांस्कृतिक परिवेश में जन-सहभागिता के प्रयास सफल नहीं हो सकते। गुणात्मक विकास की संकल्पना को मूर्त रूप देकर ही इस परिवेश को बदला जा सकेगा। यदि ऐसा हो जाता है तो विकास के क्रम में व्यक्ति के समान गांवों में भी संसाधनों को हथियाने के लिए परस्पर प्रतिद्वन्द्विता नहीं रहेगी। जैसा कि गांधी जी की कल्पना थी कि गांव आस-पास के गांवों के लिए मिटने को तैयार रहेंगे। यह सहकार की भावना की पराकाष्ठा है। व्यावहारिकता के स्तर पर भले ही यह प्राप्त न करने वाला लक्ष्य लगता हो, परंतु पंचायतों द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रमों की दिशा निर्धारित करने के उद्देश्य से सूचक के रूप में अवश्य उपयोगी हो सकता है।

जन-सहभागिता के आधार को व्यापक बनाने के लिए आवश्यक है कि सामुदायिक सद्भाव तथा सहकार के साथ-साथ जन-सामान्य के अंदर जीवन को सुखमय बनाने की प्रभावशाली इच्छा भी हो। सुखमय जीवन के मानक के रूप में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार, नीरोगी पारिवारिक जीवन, स्वास्थ्यकर आवास, स्वच्छ पेयजल तथा पौष्टिक भोजन के उपभोग को परिभाषित किया गया है। यदि व्यक्ति के मन में इन सुविधाओं को प्राप्त करने की इच्छा नहीं होगी, तो वह इनसे संबंधित कार्यक्रमों में भागीदारी कभी नहीं करेगा। इन सुविधाओं से लगातार वंचित होने पर व्यक्ति की समुदाय में असहाय होने की भावना पनपती है, जो भाग्यवादी और निराशावादी सामाजिक सोच को विकसित करती है। ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में रहते हुए व्यक्ति में जीवन को सुखमय बनाने की इच्छा जन्म ही नहीं ले पाती। वह यथास्थिति को अपनी नियति मान लेता है। एक उन्नतिशील समाज की रचना के लिए ऐसी स्थिति को भंग करना अनिवार्य है। जीवन के इन पक्षों की महत्ता को चिन्हित करते हुए गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "रोगी प्रजा के लिए स्वराज प्राप्त करने को मैं असंभव मानता हूं। ग्राम सुधार में यदि सफाई न आए, तो हमारे गांव कचरे के घूरे जैसे ही रहेंगे। ग्राम सफाई का सवाल प्रजा के जीवन का अविभाज्य अंग है। यह प्रश्न जितना आवश्यक है, उतना ही कठिन भी है। दीर्घकाल से जिस अस्वच्छता की आदत हमें पड़ गई, उसे दूर करने के लिए महान पराक्रम की आवश्यकता है।" ये सारे कार्य गांव में जन-सहभागिता को स्वत: ही प्रेरित करेंगे तथा यदि पंचायतें इसी दिशा में पहल करेंगी तो उन्हें नैतिक प्रतिष्ठा तथा सम्मान प्राप्त होगा, जिसे उनसे कोई छीन नहीं सकता।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ग्रामीण विकास के लिए अनेक कार्यक्रमों को लागू करते हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं तथा आठ पंचवर्षीय योजनाएं क्रियान्वित की जा चुकी हैं, परंतु ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन, ग्रामीण दस्तकारों तथा कारीगरों की दुर्दशा, स्वस्थ पर्यावरण तथा नीरोगी जीवन की इच्छा के प्रति उदासीनता तथा विकास के स्थायी एवं सर्वांगीण मूल्यों के प्रति अनभिज्ञता जैसी समस्याएं आज भी अपने मूल चरित्र के साथ विद्यमान हैं। विकास के प्रयासों का अंतिम लक्ष्य मानव जीवन को सुखमय बनाना है जिसके लिए आधारभूत भौतिक संरचना के विस्तार के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता। परंतु जीवन-शैली में गुणात्मक संवर्द्धन को अनदेखा करके सुखमय जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भारत के ग्रामीण जीवन में ग्राम पंचायतें इस दायित्व को पूरा कर सकती हैं। परंतु इसके लिए पंचायतों तथा पंचायत के कार्यों से संबंधित विभागों की सोच तथा कार्य-प्रणाली में अमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। नियमित प्रशिक्षण, रचनात्मक कार्यों तथा अधिकाधिक जन-सहभागिता के माध्यम से इस दिशा में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. देसाई वसंत : पंचायती राज, पावर टू द पीपुल, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1990।
2. नारायण, इसबाल (स) : पंचायती राज एडमीनिस्ट्रेशन इन महाराष्ट्र, पापुलर प्रकाशन, मुंबई, 1974।
3. भट्ट शर्मा यू.के. : न्यू पंचायती राज सिस्टम, प्रिन्टवेल, जयपुर, 1995।
4. मुथैय्या, बी.सी. : पंचायत टैक्सेस, नेशनल इंस्टीट्यूट आफ कम्यूनिटी डेवलेपमेंट, हैदराबाद, 1972।
5. मेहता, आर.आर.एस. : रूरल लीडरशिप एण्ड पंचायत, बाहरी पब्लिकेशन्स प्रा. लि., मुंबई।
6. राव, डी.वी. राघव : पंचायत एण्ड रूरल डेवलेपमेंट, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1980।
7. शर्मा, रविन्द्र : विलेज पंचायत्स इन राजस्थान, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 1976।
8. शिविया, एम. एवं अन्य : पंचायती राज, नेशनल इंस्टीट्यूट आफ कम्यूनिटी डेवलेपमेंट, हैदराबाद, 1976।
9. सिंह, हरध्यान (स) : रूरल पालिटीकल सिस्टम इन इण्डिया, इंदिरा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1985।
10. गांधी जी संग्राहक-आर.के. प्रभु : पंचायती राज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1961।
11. गांधी जी, संग्राहक-आर.के. प्रभु : ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1961। ❑

मध्य प्रदेश में ग्रामसभाएं : व्यावहारिक स्थिति

आशीष भट्ट*

73वें संविधान संशोधन के पश्चात लागू तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को यदि चार स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिला पंचायत, जनपद पंचायत एवं ग्राम पंचायत के बाद यह चतुर्थ स्तर है—ग्रामसभा। ग्रामसभा सही अर्थों में जनमूलक संस्था है। इसमें जनता के प्रतिनिधि ही नहीं, स्वयं जनता भी सम्मिलित होती है। देश में एकमात्र यही एक ऐसी संस्था है जिसमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र का रूप देखने को मिलता है। ग्रामसभा द्वारा ही अपने सदस्यों में से एक कार्यकारी समिति का निर्वाचन किया जाता है—यही ग्राम पंचायत है।

ग्रामीणों के सहयोग और सहायता से ही ग्राम का सर्वोत्तम विकास किया जा सकता है। स्थानीय कार्यों को संपन्न करने और ग्रामीण विकास के कार्यक्रम और नीतियों के लिए जन-समर्थन प्राप्त करने हेतु यथासंभव गांव के प्रत्येक वयस्क सदस्य को गांव के प्रशासन में हाथ बटाने का अवसर प्रदान किया जाए जो ग्रामसभा के माध्यम से बखूबी किया जा सकता है।

यह सही है कि पंचायती राज संस्थाएं लोकतांत्रिक हैं और वे स्थानीय स्तर पर जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन लोकतंत्र की यह भी मांग है कि इन संस्थाओं को जो अधिकार और शक्तियां प्रदान की जाएं, उन पर नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए और वह भी स्थानीय स्तर पर। ग्रामसभा ही स्थानीय स्तर पर एकमात्र ऐसी संस्था है जो पंचायतों पर नियंत्रण की भूमिका को बखूबी अंजाम दे सकती है। गांधी जी भी चाहते थे कि 'ग्रामसभाएं प्राथमिक असेंबलियों की तरह कार्य करें और वे न केवल पंचायतों के कार्यों पर नजर रखें बल्कि सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों, पटवारियों तथा पुलिस पर भी नजर रखें।

ग्रामसभा पंचायती राज की आधारशिला है। पंचायती राज का त्रि-स्तरीय ढांचा इसी पर खड़ा होता है। ग्रामसभा का पंचायत के कार्य संचालन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि ग्रामसभा सक्रिय और सजीव हो तो ग्राम पंचायतें अत्यंत कुशलता के साथ कार्य कर सकती हैं। अब तक प्रायः यह होता रहा है कि पंचायतों को मात्र पंचों, सरपंचों तथा प्रधानों तक ही सीमित माना जाता रहा है। इस प्रवृति में परिवर्तन और जन-साधारण में पंचायती राज के प्रति विश्वास और भागीदारी को बढ़ाने के उद्देश्य से 73वें संविधान संशोधन द्वारा ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा दिया गया और प्रावधान किया गया कि प्रत्येक ग्राम में एक ग्रामसभा होगी, जिसमें सभी वयस्क ग्रामवासी सम्मिलित होंगे तथा पंचायत उनके प्रति उत्तरदायी होगी। ग्रामसभा के अधिकार और कार्य राज्य विधान सभा द्वारा पारित कानूनों के आधार पर होंगे।

यदि ग्रामसभा सक्रिय और सजीव हो तो ग्राम पंचायतें अत्यंत कुशलता के साथ कार्य कर सकती हैं। अब तक प्रायः यह होता रहा है कि पंचायतों को मात्र पंचों, सरपंचों तथा प्रधानों तक ही सीमित माना जाता रहा है। इस प्रवृति में परिवर्तन और जन-साधारण में पंचायती राज के प्रति विश्वास और भागीदारी को बढ़ाने के उद्देश्य से 73वें संविधान संशोधन द्वारा ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा दिया गया और प्रावधान किया गया कि प्रत्येक ग्राम में एक ग्रामसभा होगी, जिसमें सभी वयस्क ग्रामवासी सम्मिलित होंगे तथा पंचायत उनके प्रति उत्तरदायी होगी।

मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 में ग्रामसभा संबंधी प्रावधान

मध्य प्रदेश में 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप 'मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993' बनाया गया। मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 के अध्याय-2 में ग्रामसभा का स्वरूप, ग्रामसभा का सम्मिलन और ग्रामसभा के सम्मुख समस्त लेखों के विवरण की प्रस्तुति के संबंध में प्रावधानों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं :

राज्यपाल अधिसूचना द्वारा किसी ग्राम अथवा ग्रामों के समूह को इस प्रयोजन हेतु ग्राम के रूप में सुस्पष्ट करेगा। इस प्रकार के ग्राम अथवा ग्रामों के समूह के लिए एक ग्रामसभा होगी।

इस ग्रामसभा में ग्राम के सभी वयस्क सदस्य, जिनका नाम ग्राम से संबंधित विधानसभा क्षेत्र की निर्वाचक नामावली में पंजीकृत है, सदस्य होंगे।

ग्रामसभा की प्रत्येक तीन माह में कम-से-कम एक बैठक की जाएगी। इस प्रकार वर्ष में कुल चार बैठकें करना अनिवार्य होगा। परंतु ग्रामसभा के

*संकाय सदस्य, मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, महाश्वेता नगर, उज्जैन, म.प्र.

कुल सदस्यों की संख्या के एक-तिहाई से अधिक सदस्यों द्वारा मांग किए जाने पर अथवा जनपद पंचायत, जिला पंचायत या कलेक्टर द्वारा अपेक्षा किए जाने पर ग्रामसभा की बैठक ऐसी अपेक्षा या मांग किए जाने के तीस दिन के भीतर बुलाई जाएगी। ग्रामसभा की बैठक की अध्यक्षता सरपंच द्वारा अथवा उसकी अनुपस्थिति में उप-सरपंच द्वारा की जाएगी। उस स्थिति में जबकि सरपंच और उप-सरपंच दोनों अनुपस्थित हों, ग्रामसभा की बैठक की अध्यक्षता ग्रामसभा के ऐसे सदस्य द्वारा की जाएगी जो बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से उस प्रयोजन हेतु निर्वाचित किया जाए।

ग्रामसभा के किसी बैठक के लिए ग्रामसभा के कुल सदस्यों की संख्या के एक दशमांश सदस्यों से गणपूर्ति (कोरम) होगी, जिसमें से एक-तिहाई महिला सदस्यों का होना आवश्यक है। ग्रामसभा की बैठक के लिए नियत किए गए समय पर गणपूर्ति के लिए आवश्यक संख्या में सदस्य उपस्थित नहीं हैं तो अध्यक्षता करने वाला व्यक्ति बैठक को आगामी तारीख और समय तक स्थगित कर देगा और स्थगित बैठक हेतु नई सूचना दी जाएगी। ऐसी बैठक में गणपूर्ति आवश्यक नहीं होगी, परंतु ऐसी बैठक में किसी नए विषय पर विचार नहीं होगा।

प्रतिवर्ष ग्रामसभा की वार्षिक बैठक आगामी वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से कम-से-कम तीन माह पूर्व की जाएगी और ग्राम पंचायत ऐसी बैठक के समक्ष लेखाओं का वार्षिक विवरण, पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के प्रशासन की रिपोर्ट, आगामी वित्तीय वर्ष के लिए प्रशासन की रिपोर्ट, गत अंकेक्षण, टिप्पण और उसके संबंध में दिए गए उत्तर और अन्य कोई विषय जिसे जनपद, जिला पंचायत अथवा कलेक्टर ऐसी बैठक में रखने की अपेक्षा करे, प्रस्तुत करेगी।

ग्रामसभा को यह भी स्वतंत्रता होगी कि वह उपरोक्त सभा अथवा किसी विषय पर चर्चा करे। ग्राम पंचायत ग्रामसभा द्वारा की गई सिफारिशों को कार्यान्वित करेगी।

ग्रामसभाओं की व्यावहारिक स्थिति

73वें संविधान संशोधन और मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 के तहत मध्य प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं के गठन की प्रक्रिया मई-जून 1994 में पूर्ण हुई। इसके तहत मध्य प्रदेश में 30,922 ग्रामसभाओं का गठन किया गया। तब से लेकर आज तक ग्रामसभाओं की अनेक बैठकें हो चुकी हैं। यदि हम ग्रामसभाओं के गठन से लेकर आज तक ग्रामसभाओं की बैठकों, कार्यप्रणाली, उपस्थिति आदि पर व्यावहारिक रूप से नजर डालें तो निम्न तथ्य उभर कर सामने आते हैं :

आयोजन : ग्रामसभा के आयोजन की स्थिति को देखें तो यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि अनेक स्थानों पर ग्रामसभाओं की बैठकें, नियमित रूप से आयोजित नहीं की गई हैं और न ही उनके आयोजन में सरपंचों ने कोई रुचि दिखाई है। सरकार द्वारा ग्रामसभा की बैठकों की तिथियां तय करने के बावजूद भी कई सरपंचों ने इस दिशा में कोई उत्साह नहीं दिखाया है। कई स्थानों पर ग्रामसभा की बैठक सदस्यों को विधिवत रूप से सूचना दिए बिना ही औपचारिक रूप से कागजों पर ही पूर्ण कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर महिला सरपंच एवं अन्य महिला प्रतिनिधि ग्रामसभा में उपस्थित ही नहीं हुईं, उन्होंने अपने प्रतिनिधि भेज दिए। कई स्थानों पर ग्रामसभा का आयोजन सार्वजनिक स्थानों पर न कर सरपंचों ने अपने घरों में किया।

ग्रामसभा के नियमित आयोजन की सुनिश्चितता के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा दिसंबर 1995 में पंचायत अधिनियम में संशोधन कर यह प्रावधान किया गया कि ग्रामसभा की बैठक न बुलवाने वाले सरपंच को निरर्हित किया जा सकेगा। इस प्रावधान से ग्रामसभाओं के आयोजन में तो नियमितता आई है किंतु ग्रामसभाएं प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर पाई हैं।

उपस्थिति : उपस्थिति के संदर्भ में यदि ग्रामसभा की स्थिति को देखा जाए तो कोई ज्यादा अच्छी स्थिति नहीं दिखाई देती है। ग्रामसभा की बैठक में सदस्यों की उपस्थिति संतोषजनक नहीं है। कई स्थानों पर उपस्थिति बहुत कम अथवा नहीं के बराबर रहती है। मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 में यह प्रावधान है कि ग्रामसभा की बैठक के लिए गणपूर्ति (कोरम) कुल सदस्यों के एक दशमांश सदस्यों से होगी। यदि बैठक में आवश्यक गणपूर्ति का अभाव रहता है तो बैठक को आगामी तारीख और समय के लिए स्थगित कर दिया जाएगा। उपस्थिति कम होने तथा आवश्यक गणपूर्ति न होने के बावजूद अधिकांश जगह पर बैठक आयोजित की गई है और आज तक कहीं भी इस प्रावधान के तहत बैठक का स्थगन नहीं हुआ है।

अधिकांश जगह प्रारंभ में हुई एक-दो बैठकों के प्रति ग्रामवासियों में काफी उत्साह का वातावरण देखा गया था और उपस्थिति भी काफी अच्छी रही थी किंतु धीरे-धीरे बाद की बैठकों में उपस्थिति का प्रतिशत कम होता चला गया। इसकी वजह यह रही कि प्रारंभ में पंचायती राज के प्रचार-प्रसार की वजह से लोगों में उत्साह था और उनमें यह धारणा बनी थी कि वे सभी कार्य पंचायतों के माध्यम से करा सकते हैं। इसी कारण ग्रामसभा की प्रारंभ में हुई बैठकों में अनेक स्थानों पर काफी अच्छी उपस्थिति रही और सभी स्थानों पर ग्रामसभा की बैठकों में बहुत अधिक संख्या में प्रस्ताव पारित किए गए, जिन पर एक साथ कार्यवाही होना संभव नहीं था। इन प्रस्तावित कार्यों पर कोई कार्यवाही न होने से ग्रामसभा के प्रति लोगों के विश्वास में कमी आई। फलस्वरूप उपस्थिति में गिरावट आई।

ग्रामसभाओं में महिलाओं की उपस्थिति तो बिलकुल नहीं के बराबर ही रही है। महिलाओं की कम उपस्थिति के पीछे कई कारण हैं जैसे—अशिक्षा, सामाजिक संरचना, घर के सदस्यों का दबाव, आदि। ग्रामसभाओं में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने के उद्देश्य से मध्य प्रदेश सरकार द्वारा दिसंबर 1996 में पंचायत अधिनियम में संशोधन कर यह प्रावधान किया गया कि ग्रामसभा में गणपूर्ति के लिए आवश्यक एक दशमांश सदस्यों में से एक-तिहाई महिला सदस्यों की उपस्थिति होना अनिवार्य है।

सहभागिता : ग्रामसभाओं की बैठकों की कार्यवाही में ग्रामीणों की सहभागिता की स्थिति भी अच्छी नहीं है। ग्रामसभा की बैठकों में जो सदस्य उपस्थित होते हैं, उनमें से अधिकांश की भूमिका सिर्फ मूक दर्शक की रहती है।

इसके अतिरिक्त ग्रामसभाओं की बैठकों में गांव के उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्गों का प्रभुत्व रहता है। अंतिम निर्णय सरपंचों तथा प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा होते हैं। कई जगह तो पंचायत सचिव, ग्रामसेवक आदि शासकीय कर्मचारियों की भूमिका अधिक रहती है। इस कारण आम ग्रामीणों की सहभागिता प्रभावी नहीं होती है। अधिकांश स्थानों पर तो विभिन्न कार्यों के प्रस्ताव, आय-व्यय का हिसाब तथा ग्रामसभा में प्रस्तुत किए जाने वाले अन्य विषयों का निर्णय सरपंच तथा पंचायत सचिव, ग्रामसेवक और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा पूर्व में ही तय करके अंतिम रूप दे दिया जाता है। ग्रामसभा में इसे बिना विचार-विमर्श और बहस के सिर्फ औपचारिक वाचन करके पारित कर दिया जाता है।

सुझाव

ग्रामसभाओं की इन स्थितियों के पीछे प्रमुख कारण ग्रामीण जनता का राजनीति के प्रति उदासीनता भरा दृष्टिकोण है। वे ग्रामसभा और ग्राम पंचायत में अंतर भी नहीं कर पाते हैं। उनकी सोच यह रहती है कि हमें क्या करना है, जो हो रहा है होने दो। इसके अतिरिक्त अशिक्षा, राजनीतिक चेतना का अभाव और अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति अज्ञानता आदि के कारण भी ग्रामसभा प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर पाई है। ग्रामसभा को प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :

- ग्रामसभा को प्रभावी बनाने के लिए पहली आवश्यकता है— ग्रामवासियों को ग्रामसभा के महत्व, उसकी आवश्यकता और उसकी उपयोगिता के बारे में बताया जाए। यह जिम्मेदारी ग्राम पंचायत के निर्वाचित प्रतिनिधियों की है कि वे ग्रामसभा के सदस्यों को ग्रामसभा तथा ग्राम पंचायत में अंतर को समझाए और उन्हें यह अहसास कराएं कि ग्रामसभा उनकी अपनी संस्था है। उसी के माध्यम से वे सारे कार्य करवा सकते हैं और ग्राम पंचायत पर भी नियंत्रण रख सकते हैं।
- ग्रामीणों को ग्रामसभा के महत्व के साथ-साथ ग्रामसभा की कार्यप्रणाली के बारे में भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। सभा में प्रस्ताव किस प्रकार रखे जा सकते हैं, उनका अनुमोदन कैसे किया जाता है, पंचायत का बजट और आय-व्यय क्या है, विभिन्न विषयों पर चर्चा में कैसे भाग लेना है, अपना पक्ष कैसे प्रस्तुत करना है आदि विषयों से संबंधित जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए कुछ आदर्श ग्रामसभाओं का आयोजन कर उनमें गांव के कुछ प्रतिनिधियों को सम्मिलित कर इन विषयों को समझाना चाहिए ताकि वे गांव में जाकर अन्य लोगों को इन बातों को समझा सकें। साथ ही इन आदर्श ग्रामसभाओं का फिल्मांकन कर उन्हें गांव-गांव तक दिखाया जा सकता है।
- ग्रामसभा का गठन ऐसे गांवों को मिलाकर किया जाना चाहिए जो एक-दूसरे से ज्यादा दूरी पर न हों ताकि सभी सदस्य आसानी से ग्रामसभा में भाग ले सकें।
- यदि ग्रामसभा में एक से अधिक गांव सम्मिलित हैं तो ग्रामसभा का आयोजन ग्रामसभा के क्षेत्र में सम्मिलित प्रत्येक गांव में बारी-बारी से किया जाना चाहिए, न कि हर बार पंचायत मुख्यालय पर ही आयोजन किया जाए।
- ग्रामसभा में सदस्यों की उपस्थिति की जिम्मेदारी संबंधित वार्डों के पंचों को सौंपी जानी चाहिए। इस व्यवस्था से ग्रामसभा की बैठक में उपस्थिति अच्छी रहेगी और कोरम का अभाव नहीं होगा।
- ऐसा वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जिससे सभी लोग इसे मात्र सभा या बैठक न मानकर ग्राम का उत्सव या त्यौहार मानें।
- ग्रामसभा की बैठकों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बढ़ाने के लिए ग्रामसभा की बैठक से कुछ दिन पूर्व समस्त महिला पंचों, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, ग्राम सेविकाओं और अन्य महिला कर्मचारियों के सहयोग से गांव में एक या दो बार अलग-अलग जगह गांव की महिलाओं की बैठक आयोजित कर महिलाओं के साथ विचार-विमर्श कर, महिलाओं और ग्रामीण विकास की समस्याओं आदि के बारे में चर्चा कर, ग्रामसभा के लिए प्रस्ताव तैयार किए जाएं और उनको प्रस्तुत करने तथा उन पर चर्चा का पूर्वाभ्यास कराया जाए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पंचायतों की आधार स्तंभ संस्था, ग्रामसभा को प्रभावी तथा सशक्त बनाने की आवश्यकता है ताकि उन पर पंचायतों का सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ ढांचा खड़ा किया जा सके और ग्राम स्वराज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। ❑

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

पपीते का सेवन : स्वस्थ जीवन का सशक्त आधार

डा. विजय कुमार उपाध्याय *

पपीता एक सस्ता तथा सुपरिचित फल है जो भारत के अलावा संसार के अन्य कई देशों में पाया जाता है। अनुमान है कि इसका मूल स्रोत अमरीका था जहां से सत्रहवीं शताब्दी में इसका प्रसार एशिया, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में हुआ। भारत में इसके पौधे अनेक क्षेत्रों में काफी संख्या में पाए जाते हैं। पपीते का सबसे अधिक उत्पादन बिहार में होता है। इस राज्य में पपीता के वृक्ष मुख्य रूप से रांची तथा देवघर क्षेत्रों में पाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश में मेरठ के पपीते सर्वाधिक स्वादिष्ट होते हैं। महाराष्ट्र में पुणे तथा मुंबई और कर्नाटक में बंगलौर के पपीते भी प्रसिद्ध हैं। गुजरात के अहमदाबाद, बड़ौदा, भड़ोच, भावनगर इत्यादि क्षेत्रों में पपीते की अच्छी फसल होती है।

पपीते की कई किस्में पाई जाती हैं जिनमें प्रमुख हैं—लोटन, बड़वानी, रांची, बंगलौरी, सिलोनी, सिंगापुरी, वाशिंगटन तथा मधुबिंद इत्यादि। इनमें वाशिंगटन तथा बड़वानी नामक किस्में काफी स्वादिष्ट होती हैं। इसके फल लंबे तथा बड़े आकार के होते हैं। बड़वानी पपीते लंबे तथा हरे छिलके वाले होते हैं। मधुबिंद पपीते हालांकि आकार में छोटे होते हैं परंतु काफी मीठे होते हैं। रांची जाति के पपीते में बीज कम तथा गूदा अधिक होता है। सिंगापुरी पपीते लगभग एक हाथ लंबे, कम बीज वाले तथा काफी मीठे होते हैं।

पपीते के पौधों पर साल में दो बार फल लगते हैं। कुछ पपीते फरवरी-मार्च में फलते हैं तो कुछ अन्य मई से अक्तूबर के बीच। पपीते की कुछ ऐसी जातियां हैं जो बारह महीने फलती हैं। पपीते में उपलब्ध शर्करा तथा मिठास का धूप से घनिष्ठ संबंध है। मई से अक्तूबर तक पकने वाले पपीतों में तेज धूप के कारण शर्करा तथा मिठास अधिक होती है।

पपीते के फल गोल या लंबाई लिए होते हैं। कच्चा पपीता हरे रंग का रहता है जो पकने पर पीला या सिंदूरी रंग का हो जाता है। कच्चे पपीते के भीतर उजले तथा पके पपीते के भीतर काली मिर्च के समान काले बीज रहते हैं। इसके पौधे लगभग ढाई से साढ़े चार मीटर ऊंचे होते हैं। इसके पौधे के धड़ का रंग बादामी होता है। इसके पौधे सीधे तथा प्राय: शाखाहीन होते हैं, जिन पर एरंड के समान पत्ते पाए जाते हैं। इसके फूल उजले होते हैं।

पपीते के फल के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इसमें 89.6 प्रतिशत जल, 9.0 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.4 प्रतिशत क्षार, 0.1 प्रतिशत वसा, 0.01 प्रतिशत फास्फोरस तथा प्रति 100 ग्राम में 0.4 मिली ग्राम लोहा पाया जाता है। इसमें विटामिन ए तथा सी भी काफी परिमाण में पाए जाते हैं। आम के बाद सर्वाधिक विटामिन ए पपीते में ही पाया जाता है। कच्चे पपीते में पपेइन नामक एंजाइम पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहता है। यह एंजाइम प्रोटीन को पचाने में सहायक होता है।

पपीते का उपयोग कई तरीके से किया जाता है। कच्चे पपीते से व्यंजन एवं रायता बनाया जाता है। इसके अचार तथा मुरब्बे भी काफी स्वादिष्ट होते हैं। कच्चे पपीते को कद्दूकस द्वारा कुतरने के बाद चीनी की चाशनी में डाल कर लड्डू बनाए जाते हैं जो काफी स्वादिष्ट होते हैं। पके पपीते के टुकड़ों पर यदि नमक, काली मिर्च तथा नीबू का रस डाला जाए तो वह खाने में काफी स्वादिष्ट लगता है। पके पपीते से चटनी तथा हलवा भी बनाया जा सकता है। पके पपीते को जूसर में डाल कर उसका रस निकाला जाता है जो पीने में स्वादिष्ट एवं लाभदायक होता है। इस रस में यदि थोड़ा दूध मिला दिया जाए तो उसके स्वाद में काफी वृद्धि हो जाती है।

पेट के विकारों को दूर करने के लिए पपीते का सेवन सर्वोत्तम माना जाता है। इसके सेवन से पाचन क्रिया में सुधार होता है, भूख अच्छी लगती है तथा शरीर में स्फूर्ति आती है। पपीते के सेवन से पांडु रोग में लाभ होता है। इसमें उपस्थित आर्जिनाइन नामक एंजाइम बंध्यत्व को दूर करता है, कार्पेइन नामक एंजाइम हृदय रोग को ठीक करता है तथा बाइकिन नामक एंजाइम रक्त के जमाव में लाभ पहुंचाता है। पपीते के नियमित सेवन से कोष्ठबद्धता, आंतों की दुर्बलता तथा हृदय रोग में लाभ होता है। इसके सेवन से नाड़ी की गति तथा हृदय की धड़कन नियमित होती है। बच्चों को पपीता खिलाने पर उनका शारीरिक विकास काफी अच्छा होता है।

पाचन तंत्र की कमजोरी में कच्चे पपीते का सेवन काफी लाभदायक पाया गया है। कच्चे पपीते का रस पेट में उपस्थित हानिकारक कृमियों का नाश करता है। इसके रस के सेवन से अम्लपित्त, प्लीहा, यकृत दोष तथा अर्श (बवासीर) में काफी लाभ होता है। पपीते के दूध के सेवन से भूख की कमी, अनिद्रा, सिर दर्द तथा अजीर्णता दूर होता है। हृदय रोग में पपीते के दूध का सेवन काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। पपीते के दूध के सेवन से प्रसूति स्त्रियों के स्तन में दूध की मात्रा में वृद्धि होती है। यह कुष्ठ रोग तथा उदर रोग में भी लाभ पहुंचाता है। कच्चे पपीते के दूध को शरीर में लगाने से अनेक प्रकार के चर्म रोग दूर होते हैं।

पका पपीता वीर्यवर्द्धक, वातनाशक तथा व्रणों को दूर करने वाला पाया गया है। पूरी तरह से पके पपीते के गूदे को चेहरे पर लगाने से चेहरे के दाग तथा मुहांसे दूर होते हैं।

पपीते के पत्तों को पानी में उबाल कर उस पानी को नियमित रूप से कुछ समय तक पीने से हृदय रोग में लाभ होता है। ❑

*प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरिंग कालेज, भागलपुर

JUST OUT

INDIA 1998

PRICE : RS. 220/-

Authoritative Reference Annual of Government of India

Must for

- **All Libraries**
- **Research and Reference Work**
- **Candidates appearing for Competitive Examinations**

Book your copy with the local agent
or
Send your payment by DD/IPO/MO to :
Business Manager,
Publications Division, Ministry of I & B,
Patiala House, New Delhi-110001.

Available at

Sales Emporia of Publications Division :

Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi**; Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi**; Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi**; Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai**; 8 Esplanade East, **Calcutta**; Bihar State Cooperative Bank Building, Ashoka Rajpath, **Patna**; Press Road, **Thiruvananthapuram**; 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow**; Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai**; State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad**; 1st Floor, 'F' Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore**.

PIB Sales Counters :

C.G.O. Complex, 'A' Wing, A.B. Road, **Indore**; 80, Malviya Nagar, **Bhopal**; K-21, Nand Niketan, Malviya Marg, 'C' Scheme, **Jaipur**.

आई.एस.एस.एन. 0971-8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन, नई दिल्ली-110002. प्रकाशन स्थान : 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान